शीराज़ा
हिन्दी

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष ६, अंक १

सम्पादक
श्यामलाल शर्मा

ललितकला संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू

शीराज़ा हिन्दी

वर्ष ९] [अंक १

(जून १९७३)

अनुक्रमणिका

लेख		पृष्ठ

कहानी कुञ्ज

कविता क्यारी

सम्पादकीय

हम किधर जा रहे हैं ?

भिन्न २ कालेजों और विश्वविद्यालयों में परीक्षापत्रों के आधार पर गड़बड़ एक स्वाभाविक विषय हो गया है। परन्तु लखनऊ विश्वविद्यालय में इमारतों को फूंकना, लाखों की सम्पत्ति को नष्ट करना पुलीस का इस निर्मम काण्ड को देखते रहना तथा प्रोत्साहन देना और फिर सेना बुलाई जाने पर उस का प्रतिरोध करना साधारण छात्र समस्या नहीं कहा जा सकता। पुलीस और सेना का परस्पर उलझना ३४ व्यक्तियों का मारा जाना देश की सुरक्षा और व्यवस्था को चुनौती है। सैक्युलर भारत ने जाति व्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म को तो मिटाया परन्तु सोशलिज्म के नाम पर इतना विस्तृत और संयम से बाहर हो जाने वाला वर्गवाद खड़ा कर दिया है कि राष्ट्र, जाति-प्रथा और वर्णाश्रम के बदले व्यवसाय और नौकरियों के आधार पर छिन्न-भिन्न होगया है। ये यूनियनें और संगठन मज़दूर और नौकरी पेशा लोगों के हो नहीं सब कर्मचारियों और पुलीस वालों तक के बन गये हैं।

एक और भयंकर स्थिति जो निर्मित हो गई है वह यह कि जन-साधारण के हृदय में यह धारणा पक्की हो रही है कि सरकार कोई भी बात पत्र-व्यवहार या डेपुटेशन से नहीं सुनती या मानती। सरकार उचित मांग भी सत्याग्रह, प्रदर्शन, लाठीचार्ज, गोली काण्ड के बाद ही सुनने और मानने को तैयार होती है। व्यवस्था और सुरक्षा करने वाले स्वयं ही प्रदर्शन, हड़तालें, घेराव और बन्ध करने लगें तो देश में शान्ति और व्यवस्था (Law & order) की क्या स्थिति होगी ? लगता है कि सोशलिज्म के प्रचार के नाम पर राष्ट्र में

अशान्ति और भेद फैलाने वाले तत्व विदेशी ताकतों की शह पर अत्यंत क्रियाशील और उग्र हो चुके हैं। उनकी घुसपैठ पुलीस और सेना के बीच भी हो चुकी है। विदेशी ताकतें ऐसे तत्वों के आधार पर देश में संगठन और राष्ट्रीयता के भावों को क्षीण करने में पूर्ण योगदान दे रही है।

प्रादेशिकता के आधार पर एक देशीयता की भावना क्षीण की जा रही है। पारस्परिक मत भेदों को उग्रतर करने के लिये भाषावाद और प्रान्त भेद को उभारा जा रहा है। आन्ध्र और तैलंगाना की समस्या ने केवल रेल विभाग की अठारह करोड़ की सम्पत्ति नष्ट की है। भाषा के नाम पर तमिल नाडू ऐसे लगता है कि वह भारत देश का अंग ही नहीं है। तमिल भाषा से चुन चुन कर वैदिक और संस्कृत शब्दों का बहिष्कार किया जा रहा है। सार्वदेशीयता की कल्पना को ही झुटलाया जा रहा है।

जब एक आसाम के नागालैण्ड, अरुणांचल, मेघालय, मिजोरम इत्यादि विभाग भारत सरकार स्वयं करती है तो फिर हरियाणा पंजाब से, हिमाचल प्रदेश डुग्गर से, तेलंगाना आन्ध्र से, विदर्भ महाराष्ट्र से पृथक होने और अपने पृथक शासन बनाने के लिये लालायित क्यों न हों?

नागालैण्ड को भारत के साथ जोड़ने वाली आखिर कौन सी कड़ी होगी? नाम की प्रेमभावना नहीं, भाषा साम्य भी अंग्रेजी तक ही सीमित है। किसी भी भारतीय को परमिट लेकर वहां प्रवेश मिलता है। विदेशी मिशनरियों का उग्र प्रभाव किसी भी भारतीय संस्कृति की भावना को अंकुरित ही नहीं होने देता। तो फिर नागालैण्ड का वासी अपने आप को भारतवासी किस आधार पर मानेगा?

Minorities के नाम पर हम उन्हें भाषा पृथकता, धर्म-पृथकता, संस्कृति-पृथकता, नौकरियों की पृथकता देते जा रहे हैं। देश के विवाह सम्बन्धी कानून भी उन पर लागू न होंगे तो कल वे उग्र पृथकता वादी बनकर अपने आप को अभारतीय कहने में क्यों झिझक करेंगे?

देश को राष्ट्रीयता की भावना में बान्धने वाला धर्म होता है वह भारत का कोई नहीं। भाषा होती है वह हिन्दी हमने बनने नहीं दी। अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा का काम चलाये जा रही है। परन्तु अंग्रेजी की जड़ यहां नहीं है। पृथक २ भाषाओं ने पृथक प्रादेशीयता की भावना को प्रबल किया है। इस विघटनकारी वातावरण में सोशलिज्म के प्रबर वर्गवाद ने समाज को भिन्न २ वर्गों में

विभक्त कर दिया है। विदेशी ताकतों के षड़यन्त्र देश को गुट विशेष में धकेलते जा रहे हैं। क्या संसार का महान लोकतन्त्रात्मक गण तन्त्र भारत अधिनायक वाद के दल दल में धंसकर प्राण देगा ?

लोकोपकार

*इसाई मिश्नरियों द्वारा भारत में चलाये जा रहे हस्पताल—

आन्ध्र प्रदेश	८३
आसाम	१७
विहार	४३
गुजरात	१२
हरियाणा	३
हिमाचल प्रदेश	४
जम्मू कश्मीर	१
केरल	१७४
मध्य प्रदेश	५४
महाराष्ट्र	५१
मैसूर	४६
उड़ीसा	१४
पंजाव	७
राजस्थान	१५
तामिल नाडु	१०३
उत्तर प्रदेश	४१
पश्चिम बंगाल	१८
दिल्ली	३
गोआ	५
	६६७

भारत सरकार की धर्म-निरपेक्ष नीति तथा इसाई संसार की लोकोपकारी भावना के सम्मिलित प्रयास से भारतीय जनता का कल्याण हो रहा है। दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।

---

*लोकसभा वादविवाद (Debates)
पंचम अधिवेशन
जिल्द १८ अंक १२ लोकसभा सैक्रिटेरियेट, नई दिल्ली।

स्वागतम्

अकादमी की डोगरी शब्द-कोश योजना के सम्बन्ध में मुझे प्रधान सम्पादक के रूप में आना पड़ा है। अंक (वर्ष ९ अंक १. जून, १९७३) के प्रकाशन के साथ हिन्दी शीराज़ा का सम्पादन कार्य श्री रमेश दत्त मेहता जी ने सम्भाला है। श्री मेहता जी ने जम्मू विश्वविद्यालय से हिन्दी एम० ए० किया है। और पी० एच० डी० की तैयारी कर रहे हैं। आप एक सक्रिय नवयुवक तथा हिन्दी की नई कविता के उद्भावक कवि हैं। आपकी नवीनकृति 'खुले कमरे बन्द द्वार' का यथेष्ट स्वागत हुआ है। मैं मेहता जी को नवीन उत्तर-दायित्व सम्भालने पर बधाई देता हूं और शीराज़ा परिवार में उनके पदार्पण का स्वागत करता हूँ।

—श्यामलाल शर्मा

डोगरी लोक-गीतों में भाव लालित्य

—प्रो० शक्ति शर्मा

सौन्दर्य वह जो मन को पकड़ ले, गहरे में जाकर छूले, विभोर कर दे। साधारण गद्य वाक्य और कवितापंक्ति में यही अन्तर है कि काव्य सुनने वाले को आत्मसात् कर लेने की शक्ति रखता है, रस में बोर देता है, अस्तित्व भूल जाने पर विवश करता है। साधारण बात-चीत में भी कोई विभोर करने वाला वाक्य सुन पड़े तो मन उसकी काव्यात्मकता में बह जाता है। यह काव्य प्रतिभा ईश्वरीय देन है; अध्ययन से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं। अध्ययन से छन्द, अलंकार, भाषा सौष्ठव, शब्द शक्तियों का ज्ञान और रीति शैली आदि साहित्य के कलापक्ष को सजाने संवारने का अभ्यास किया जा सकता है। काव्यशास्त्रों का अध्ययन करके काव्य में गुण दोषों को परखने की सूक्ष्म दृष्टि भी प्राप्त की जा सकती है। परन्तु काव्य सौन्दर्य की सीधी सहज अभिव्यक्ति जो अनपढ़ एवं काव्यशास्त्र से अनभिज्ञ लोकगीत की निम्न पंक्ति में है वह पचासों रीति ग्रन्थों के अध्ययन से भी प्राप्त नहीं होती। मुग्धा नववधु की लाज, मिलन की उत्कण्ठा एवं प्रकृति से सहायता प्राप्ति के अनुरोध की बड़ी ही सहज अभिव्यक्ति है।

"चन्नां तेरी चाननी, तारेया तेरी लो
गोरी सेजा जानाई तूं बदलै ओह्‌ले हो।"

(ऐ चान्द तुम्हारी चान्दनी और हे सितारे तुम्हारी झिलमिलाहट सुन्दर सही परन्तु मुझे (पी की) सेज पर जाना है। तुम बादल की ओट में हो जाओ)।

उक्ति के कलापक्ष की सहल सरलता, अलंकार विहीन सादगी के साथ साथ भावपक्ष की गम्भीर मार्मिकता, औत्सुक्य, उत्कण्ठा एवं नववधु सुलभ लाज का प्राकृतिक सौन्दर्य के परिवेश में चित्रण इतने सब कुछ का एक बारगी अंकन कला की पराकाष्ठा है, काव्यसौन्दर्य का आश्चर्य है।

डोगरी लोक गीतों के लेखक (नहीं लोकगीतों के लेखक तो होते ही नहीं) बनाने वाले गीतकार इस सूनी बंजर पहाड़ी भूमि में अनुभूति के जो सटीक चित्रण कर गये हैं सिद्धहस्त कवियों की सजी संवरी कविता उनके सामने फीकी लगती है।

"जोबनै दा बूटा भुल्ली-भुल्ली पौन्दा,
बेई जन्दे नजरें दे डार"

(कामिनी का यौवन रूपी वृक्ष भूल रहा है। नजरों के डार के डार उस पर बैठ जाने हैं।)

नारी के रूप यौवन का बड़ा कलात्मक एवं कल्पनात्मक वर्णन रीति काल के एवं आधुनिक कवियों ने क्या है। परन्तु यौवन का जितना सटीक यथार्थ क्रिया एवं प्रक्रियात्मक चित्रण उपर्युक्त पंक्ति में है ऐसा सार्थक, सुन्दर सांगरूपक हिन्दी और संस्कृत साहित्य में मिलना कठिन है। जवानी नये पल्लवित वृक्ष की तरह इठलाती हवा में भूलती है। वह अत्यन्त चंचल है। भूल भूल जाती है तो निश्चित है कि वृक्ष पर पक्षी भी चह चहाएंगे। परन्तु गीत कार की पैनी दृष्टि ने पक्षी भी अलौकिक ही चुने—नयन पक्षी। कई आते है यौवन के वृक्ष पर बैठते हैं। पर उन्हें वहां स्थायी निवास कहां प्राप्त हो सकता है। पक्षियों क भुण्ड उड़ उड़ कर आते हैं बैठते हैं और फिर उड़ जाते हैं। कल्पना ने उपमा भी ढूण्डी तो कितनी यथार्थ कि वृक्ष पर पक्षियों के डारों का पूर्ण बिम्ब आंखों के सामने स्थापित हो जाता है। आधुनिक आलोचना शास्त्रियों को बिम्ब विधान के लिये इतना सुन्दर उदाहरण साहित्य में कभी ही मिलता होगा।

पंत जी ने कलात्मक रूपयौवन के वर्णन में

"वह सुन्दर है सांवली सही, तरुणी है हो षोड़षी रही—
विवसना लता सी तन्वंगिनि, निर्जन में क्षणभर की संगिनि
वह जागी है अथवा सोई...............
नारी कि अप्सरा या माया, अथवा केवल तरु की छाया।"

धरती के यथार्थ का वह आग्रह कहां है जो डोगरी लोक-गीतकार की उपर्युक्त पंक्ति में है।

डुग्गर भूमि का लोक-गीतकार धरती के यथार्थ के संदर्भ में नारी के रूप-सौन्दर्य का चित्रकार ही नहीं उसके अन्तःकरण स्थित भाव एवं स्वभाव गत प्रकृति का सटीक एवं सचोट-चित्रण करने में भी वे जोड़ हैं।

हिन्दी संस्कृत के कवियों ने नारी की चाल का चित्रण करने में बड़ी ही निपुणता दिखाई है। गज गामिनी एवं हंस गामिनी कह कर उसकी शारीरिक स्थिति के अनुसार उस की गत्यामक स्थिति का अन्तर स्पष्ट कर दिया है। परन्तु डोगरी लोकगीत की पंक्ति

"गोरी चलदी ऐ सपोलुऐ दी चाल"

में घमण्ड का भाव चित्रण है। रूप गर्विता नायिका की चाल अमृत की शान्ति नहीं ज़हर की बेचैनी पैदा करती है। तथा—

"गंगिए बदाम रंगिए, लौंगे दी पुड़िए
केसरै दी तुरिए, जहरा दी पुड़िए"

के सौन्दर्य चित्रण में हिन्दी कवियों का नायिका का चान्दनी सा सफेद अस्वस्थ सौन्दर्य नहीं बादाम के रंग का स्वस्थ सौन्दर्य चित्रण है जो लौंग की तरह तीखा, केसर सा आल्हाद कारक एवं जहर सा प्रभाव कारी है।

ब्रजभाषा अपने समृद्ध काव्य सौन्दर्य के कारण बड़ भागन है क्योंकि सूर, नन्द दास, रसखान, मतिराम आदि महान् कवियों ने अपने सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान एवं काव्य प्रतिभा से उसके भण्डार भरे हैं। ब्रजभाषा के एक कवि 'सागर' का एक पद है—

"जाके लगे सोई जाने व्यथा, पर पीर में कोई उपहास करे न
सागर जो चुभी जात है चित्र तो कोटि उपाय करे पै टरे न
नेक सी कांकरी जाके परे वह पीर के मारे सुधीर धरे न
कैसे परे कल एरी भटु जब आंखि में आँखि परे निकरे न"

लाटानुप्रास अलंकार का चमत्कार एवं उक्ति वैचित्र्य सचमुच ही हृदय और मस्तिष्क को एक दम चमत्कृत कर देते हैं। परन्तु अनगढ़, अनपढ़ लोक-गीतकार की सादगी भी देखिये—

"जिनें ते नैनें इच किट्-नि समीन्दी, ढोल नीं समींदे सारे"

(जिन ग्रांखों में मामूली तिनका सहन नहीं हो सकता वहां प्रिय पूर्णरूप में समाजाते हैं) जिस ग्रांख में एक तिनका या कण भी दुखता है उसमें प्रियतम समूलचा ही समा जाता है। कितनी सहज, सुन्दर, संक्षिप्त सी ग्रभिव्यक्ति है। सीधे मन को छूने वाली एवं नायिका की तन्मयता की व्यञ्जक।

प्रियदर्शन की उत्सुकता, चाह एवं उत्कण्ठा में कवियों ने दूर दूर से कौड़ियां लाई हैं। जायसी की मानस पुत्री नागमती ग्रपने प्रियतम को सन्देसा भेजती है—

> "पिय को कहहु सन्देसड़ा ऐ भौंरा ऐं काग
> सोधनि विरहा जली मुई ताको धुंवा हम लाग"

ग्रनुभूति की तीव्रता इस में है सन्देह नहीं लेकिन ग्रतिशयोक्ति की ग्रस्वाभाविकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता।

विश्ववन्ध कवि कालिदास ने मेघ को दौत्य कर्म सौंप कर ग्रपने कलात्मक चमत्कार का परिचय भले ही दिया हो लेकिन साथ ही ग्रपने नायक की विवशता भी ग्रंकित कर दी—जो सिवाय सन्देश भेजने के ग्रौर कुछ नहीं कर सकता, निष्क्रिय बैठा ग्रांसू बहाता है। प्रिय को सन्देशभेज देने ग्रौर प्रिय के मिलने के लिये स्वयं प्रयत्न करना ग्रलग ग्रलग ग्रर्थ रखते हैं। एक ग्रोर ग्रनुभूति की उत्कण्ठा की ग्रभिव्यक्ति मात्र है दूसरी ग्रोर मिलन यात्रा ग्रौर उत्कण्ठा निम्न पंक्ति में देखिये—

> "वदलुएं कोला बी उच्चा होई होई
> मन तुगीं देया दा ग्राले"

(बादलों से भी ऊंचा उठकर मन तुझे पुकार रहा है) बादल ग्राकाश में घूमते हुए सारे संसार को देखते हैं। मन वादलों से भी ऊपर उठकर प्रिय को ढूण्ड रहा है, ग्रावाज़े दे रहा है। लोक-गीतकार की कल्पना कितनी ऊंची उठ गई है। उत्कण्ठा की कोई सीमा नहीं। जायसी का काग ग्रौर भौंरा सन्देश पहुँचायेंगे कोई भरोसा नहीं। कालिदास के मेघ ग्रौर हरि ग्रौध जी के पवन दूत बना कर भेजने में, उनको मार्ग की झंझटों से सुलझने की बुद्धि देने का इतना धैर्य नायिका को कहां है। वह तो ग्रपने विश्वचारी मन की सहायता से प्रिय को ढूण्डने निकल पड़ती है ग्रौर बादलों से भी ऊपर उठकर उस को ग्रावाज़ें देती है। उत्कण्ठा की तीव्रता में किसी का सहारा न लेकर स्वयं प्रयत्नशील हो उठना ही स्वाभाविक है।

निम्नपंक्तियों में प्रेम का उघड़ा चित्रण जिसमें लोक लाज, समाज मर्यादा एवं सभ्यता का कृत्रिम-आवरण उतार कर एक ओर रख दिया गया है। प्राकृतिक स्वच्छन्द प्यार और वैबाहिक सम्बन्ध के प्रणय का अन्तर जमीन और आसमान के अन्तरालसा स्पष्ट है।

"खस्म मरे रण्डी रौहना ओ, यार मरे कियां जीना ओ
तन्द जे त्रुटे गण्डी लैनी औ, अम्बर फटै कियाँ सीना ओ"

(पति की मृत्यु पर तो वैधव्य भोगा जा सकता है परन्तु प्रेमी के मर जाने पर जीवन कैसे सम्भब हो सकता है। एक धागा टूट जाये तो कोई गाण्ठ लगा भी ले परन्तु आकाश ही फट जाये तो कैसे सिल सकता ?)

विरह व्यञ्जना की पराकाष्ठा के साथ वियोगिनी की अवस्था का ऐसा प्रतीकात्मक चित्रण काव्य प्रतिभा की एक चमत्कारिक देन है। जो संसार भर के काव्य सागर में मोती की तरह कभी २ हाथ लगती है।

काव्य मुख्यत: रस है। रसों में भी करुण रस ही मुख्य है। करुण एव रस: - भव भूति। डोगरी लोक-गीतकारों ने कितनी तीव्रता से इस रस की अनुभूति की है यह अवर्णनीय है। चिरन्तन करुणा, वियोगजन्य उत्कण्ठा एवं अन्त:स्तल स्पर्शिनौ मार्मिकता की भावपूर्ण अभिव्यक्ति इस पंक्ति में हुई है—

"गिल्ले गोटे चुल्ली लाई धूएं पज्ज रोन्नी आं"

(चूल्हे में गीले उपले लगाकर धूएं के बहाने रो लेती हूँ)

डुग्गर की नववधू अपनी प्रादेशिक मर्यादाओं के कारण किसी के सामने अपने विरह की व्यञ्जना भी नहीं कर सकती। सास, ननन्द, जेठानी के भरे पूरे घर में वह किसी के सामने लाज के कारण न तो वियोग का दु:ख प्रकट कर सकती है न ही आंसू बहा कर उपहास का पात्र बनना चाहती है। पर दिन रात विरह की आंच में तपते अपने मन को हलका कैसे करे। अत: बड़ी चतुराई से उसने उपाय निकाला है। वहीं गीले उपले चूल्हे में डाल कर अपने हृदय की तरह ही धीरे २ सुलगने को छोड़ देती है। धूआं फैलने लगता है और धूएं के बहाने वह खूब रो लेती है। मन की कसकती पीड़ा को हलका कर लेती है। कितना भावपूर्ण एवं सचेष्ट चित्रण है वियोगिनी की विरहावस्था का।

इस सृष्टि का आधार केवल पति पत्नी का सम्बन्ध ही नहीं डुग्गर के

लोक गीतकारों ने गुप्त जी की उक्ति में निहित सत्य को बहुत पहले ही समझ रक्खा है।

"नारी जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी"

अर्थात् नारी अपनी समग्रता में करुणा है। अतः उसके कन्या रूप में, भगिनी रूप में, माता रूप में सब जगह करुणा के स्रोत बहते हैं। सुख समृद्धियों के सपने संजोए, फूलों की सेज पर सोने के बदले जब व्याही हुई लड़की खेतों में घास खोदती है तो 'धार' (पहाड़ी) के उस पार ही जहां उसने फूलों के सपने देखे थे अपने पीहर की ओर लक्ष्य करती हुई वह गाती है—

"चम्बे दिये धारे बिन्द नीठड़ी होयां
घा बड्डी २ करी पूलड़े बनांदियागी—
हत्थुएं दे छाले दिक्खी २ करी गांदिया गी
दिक्खी लैं भ्रा, बिन्द नीठड़ी होयां"

(हे चम्बे की पहाड़ी ! जरा नीचे झुक जा ताकि मेरा भाई उस पार से मुझे देख ले कि उसकी लाडली बहन घास काट काट कर पूले बना रही है और अपने कोमल हाथों के छाले देख २ कर गा रही है। पत्थर हृदय भी नारी जीवन के संघर्ष की उस करुण गाथा को सुनकर पसीज उठता है।)

डुग्गर प्रान्त में पंजाब, राजस्थान आदि भारत के अन्य प्रान्तों की तरह लड़की के ब्याह पर गाये जाने वाले सुहागों (लड़की के ब्याह में गाये जाने वाले लम्बे २ स्वरों के गीत जिनमें ढोलक आदि किसी साज की जरूरत नहीं होती) में करुणा की जो आद्रता रहती है वह अपने वेग में पत्थर दिलों को भी रुला देती है। उदाहरण—

१ बोल नी मेरिये बागें दिये कोयले
वाग तजी हुण कांह् चलीएं ?
बाबल मेरे धर्म जे कीता
धर्में दी बद्धी मैं चलीआं।

(ऐ मेरी उपवन की कोयल ! तू यह बाग छोड़ कर कहां जा रही है ? लड़की उत्तर देती है—मेरे पिता ने वचन दिया है मैं धर्म का पालन करने के लिये ससुराल जा रही हूं।)

२ तेरे आँगन विच २ वे बावल गुड्डियां कौन खेले
मेरियां खेलन पोत्तरियां, धिये घर जा अपने।

(हे पिता तुम्हारे आँगन में अब गुड़ियां कौन खेलेगा ? पिता उत्तर देता है—कि अब पोतियां गुड़ियां खेलेंगी, बेटी अब तू अपने घर जा। अब सुसराल ही तेरा घर है।)

३ औन्दे जन्दे राही पुछदे तूं कैत लाडो रोईएं
बावल मेरे काज रचाया मैं परदेसन होई आं।

(आते जाते व्यक्ति पूछते हैं बेटी तू क्यों रोती है ? लड़की उत्तर देती है—मेरे पिता ने मेरा व्याह रचाया है। मैं विदेस जा रही हूँ।)

४ साम्भी रखेओ मेरे गुड्डी पटोले
मां नि रोयां तू भित्तें दे ओह्ले
धी परदेसन होई।

(मेरी गुडियां और उनके वस्त्राभूषण सम्भाल कर रखना। हे माता तू द्वार की ओट में रोना नहीं। तुम्हारी लाडली बेटी परदेस जा रही है।)

करुण रस के पश्चात् शृङ्गार रस ही अधिकांश काव्य का ग्राह्य रहा है। डुग्गर के लोक गीतों में शृङ्गार के संयोग वियोग पक्षों का भी अनूठा चित्रण हुआ है। नायिका घड़ा लेकर कूएं पर पानी भरने गई है। नायक बात करना चाहता है। लेकिन कोई बहान नहीं मिल रहा। नायिका ने घड़ा कूएं में गेरा तो वह 'गड़ गड़ गडुम करने लगा। बस लोक गीतकार के नायक को बात करने का बहाना मिल गया। वह कहता है—

"बोलने आली बोलदी नैइयों, तूं कैत बोलना मड़ेया ओ"

(जिससे बोलने की चाह है वह तो बोलती नहीं। तू क्यों बुड़बुड़ाता है?)

इस पंक्ति में न तो चमत्कार है, न अलंकार और न ही उक्ति वैचित्र्य। लेकिन कुछ ऐसा है जो गीतकार की दाद देने को विवश करता है कुछ भी न कह कर बहुत कुछ कह दिया है उसने एक ही पंक्ति में।

गीत इस प्रकार है—

घड़ेया वे घड़ोलड़ेया, तुगी जेठम्हीनै घड़ेया ओए

... ...

भरने आली बड़ी मजाजन डुमकें डुमकें भरेया ओए
लज्ज वो तेरी डुनकें आली बिन्ना मोती जड़ेया ओए
बोलने आली बोलदी नैइयुं, तूं कैत बोलें मड़ेया ओए ।

(हे घड़े ! तुझे ज्येष्ठ मास में तैयार किया गया। पानी भरने वाली बड़ी नखरे वाज है। बड़े नखरे से पानी भरती है। घड़े के गले में डालने वाली डोरी भी रंगीन है। सिर पर घड़े के नीचे रखने वाला 'बिन्ना' भी मोतियों से जड़ा हुआ है। जिसके साथ बोलने की चाह है वह तो बोलती नहीं, तू क्यों बुड़बुड़ाता है ?)

यह है काव्य व्यञ्जना का चमत्कार। पानी में घड़े के डुबोने में 'गुड़-गुड़' शब्द तो स्वाभाविक है। उस शब्द को गीतकार ने कितना बड़ा अर्थ दे दिया है। और वह भी सीधा नहीं व्यञ्जनापूर्ण। सीधी सी बात कह देने में भला काव्यात्मकता कहां रह जाती ? करुण शृङ्गार आदि प्रमुख रस तो लोक गीतों में स्वाभविकतया रहते ही हैं डोगरी लोक गीतों में हास्य रस की पुट भी भरपूर मात्रा में मिलती है। हास्य रस के लिये ब्याह शादियों पर गाई जाने वाली गालियां और मुहावरे मुख्य हैं जो हर भाषा के लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं। डोगरी लोक गीतों में युवती पत्नी के वृद्ध पति का एवं बच्चे के जन्म पर नानी दादी के रेखा चित्र हास्य रस की अच्छी सृष्टि करते हैं। परन्तु भैंस का काव्यात्मक एवं हास्यपूर्ण चित्र शायद मुश्किल से मिले। नारी की दन्त पंक्ति की उपमा तो अनार एवं मोतियों से कई लोगों ने दी है लेकिन भैंस के दान्तों को "चम्बे दियां कलियां" कहना डोगरी लोक गीतकार की ही मौलिक कल्पना है।

डोगरी का लोक साहित्य काव्य गुणों की खान है यह झलक मात्र कुतूहल वर्धिनी है। आवश्यकता है इस के अध्ययन की। यह प्रसन्नता का विषय है कि अब विद्वान लोक साहित्य को भी उतना ही मान देने लगे हैं जितना कि शिष्ट साहित्य को।

हरियाणवी - लोकोक्तियां और मुहावरे

—रामसिंह यादव

लोकोक्तियां और मुहावरे किसी भी जीवित भाषा के प्राण होते हैं। भाषा अथवा बोली में सौन्दर्य और सौष्ठव लाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनिश्चित काल से चला आ रहा है। डा० हजारीप्रसाद के शब्दों में—"मुहावरों के न रहने से भाषा जीवंत और प्रवाहमयी नहीं रह पाती।" कहावतें (लोकोक्तियां) और मुहावरे भाषा-विशेष की थाती होते हैं। इससे भाषा सजीव हो उठती है। उसकी नीरसता समाप्त हो जाती है, प्रवाह बढ़ जाता है। जिस भाषा में जितने अधिक मुहावरे होंगे उसमें उतनी ही अधिक प्रौढ़ता होगी। थोड़े में बहुत कुछ कह देने की उसमें उतनी ही क्षमता होगी। घटना विशेष के सामान्यीकरण में वह उतनी ही सशक्त होगी।

भाषा में कहावतों का वही स्थान है जो ज्यामिति में प्रमेयों का होता है। जिस प्रकार ज्यामिति में किसी परिणाम पर पहुँचने के लिए प्रमेय सहायक होते हैं, उसी प्रकार भाषा में भी कहावतें किसी घटना की पुष्टि करती हैं। जीवन की समस्याएं कहावतों को जन्म देती हैं। कहावतों में मानव जीवन के सभी सुख, दुःख, हर्ष, विषाद, रुचि व ग्लानि विविध वर्णों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार विचार, रीति-परम्परा आदि के अभिव्यंजन में कहावतों का सहयोग ही महत्वपूर्ण रहता आया है। भाषा में इनका प्रयोग निगमनात्मक (डिडक्टिव) रूप में होता है।

मुहावरों और कहावतों का साहित्य उतना ही पुराना है जितनी मानव

भाषा। लिखित साहित्य के प्रादुर्भाव से पूर्व उसका जन्म हो चुका होता है। इनमें देश, जाति तथा भाषा के हजारों वर्षों के अनुभव और संस्कार छिपे रहते हैं। जो आगामी पीढ़ियों का सिद्धान्त रूप में मार्गदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिए–पंचतंत्र व हितोपदेश की लोकोक्तिमूलक कथाए चाणक्य सूत्र, बौद्ध साहित्य, प्राकृत तथा संस्कृत के अन्यान्य नीति विषयक ग्रन्थ कहावतों से भरे पड़े हैं। और ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनेक पूर्णापूर्ण ऋक, पाद या अर्द्धपाद स्वभावत: लोकोक्ति या कहावत कहे जा सकते हैं। इनकी उत्पत्ति में किसी एक व्यक्ति का हाथ नहीं होता बल्कि यह एक विशाल जन-समुदाय की स्वीकृति से जन्म लेती है। डा० चटर्जी ने एक स्थान पर लिखा है—"जनता की समवेत अभिज्ञता (अनुभव) तथा विचार कहावतों में उपलब्ध होते हैं।" लार्ड रसल ने लोकोक्ति की परिभाषा देते हुए कहा—"एक की सूझ जिस में अनेकों का चातुर्य सन्निहित है।" डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में—"लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं।"

इस दृष्टि से यदि देखा जाये तो हरियाणा प्रदेश के मुहावरे और लोकोक्तियों का विशेष महत्व है। विश्व की विभिन्न भाषाओं के मुहावरों और लोकोक्तियों से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं। यहां हम कुछ हरियाणवी लोकोक्तियां और मुहावरों की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहे हैं। यथा:—

"गींतड़ा के भींतड़ा"

अर्थ है—मनुष्य की प्रसिद्धि दो कारणों से होती है। धर्मशाला, भवन निर्माण कराने से या गीतों में गाये जाने से।

'कांजरा के डेरा में टूका का न्याव'

कंज़र एक जाति है जो मांग कर अपना निर्वाह करती है। उनके डेरों के अन्दर जमीन जायदाद के झगड़े तो होते नहीं हैं। बस जो बासे-फूसे टूक मिल जाते हैं और जो बच रहते हैं उन्हीं के ऊपर झगड़ा होता है।

'मूस्सल का सिंह में के भीज्जै से'

जो मूसल को जानते हें उन्हें इस अनुभव का ज्ञान अवश्य होगा कि वर्षा से मूसल पर कोई प्रभाव हहीं होता अर्थात् निर्लज्ज मनुष्य पर बातों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

'खेती खसम सेत्ती, वरना रेत्तो का रेत्ती'

कृषि कार्य यदि स्वयं मालिक ही करे तब अच्छा होता है, नहीं तो वह व्यर्थ होगा।

'काला ब्राह्मण, भूरा चमार।
उल्टी मूंछ सुनार, इनका न इतबार।।'

काले रंग का ब्राह्मण हो और गोरे रंग का चमार। सुनार नीची मूंछ रखता हो इन तीनों का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

ब्राह्मण कुत्ता बाणियां
तीनूं जात कुजात।
अथवा
बामन कुत्ता हाथी—ये नहीं
तीन, जात के साथी।

ब्राह्मण, कुत्ता, बनियां और हाथी ये कभी भी अपनी ज़ाति वालों के सगे नहीं होते हैं। एक दूसरे को देखकर गुर्राते हैं, इर्ष्या करते हैं।

'काल बागड़ तै ऊपजे, अर बुरा ब्राह्मण ते होय'

अकाल सदैव बागड़ प्रदेश से उत्पन्न होता है और दूसरों का अहित सदा ब्राह्मण से होता है।

'तीन जात न पालै, कायत, कागा, कुकरा।

अर्थात् तीन जातियों से कभी प्रीति नहीं करनी चाहिए। इनसे निकटता नहीं रखनी चाहिए। एक तो कायस्थ, दूसरे मुर्गा और तीसरा कुत्ता।

'आठ फिरंगी, नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा।'

हरियाने की सभ्यता व संस्कृति में जाट का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जनपदीय मानस न उसे चारों ओर से परखा है। आठ फिरंगी और नौ अंगरेजों के साथ लड़ने का साहस, वीरता जाट के दो लड़कों में है। यह उक्ति यही बताती है।

'अहीर जाने खेती की तदबीर'

कृषि के कार्य में अहीर बहुत ही चतुर होता है। वह मनचाही फसल उत्पन्न करने में निपुण होता है।

'बनियां गीत ना बेसवां सती, कागा हंस ना गधा जती।'

'जननहारा जानियां, बनियां तेरी बात।
बिन छांते लोहु पिवे, पाणी पीवे छान।''

बनिया कभी किसी का मित्र नहीं होता है और वैश्वा सती नहीं होती। कौआ कभी हंस नहीं हो सकता और न गधा यती-तपस्वी बन सकता है।

'तेली का तेल जले, तेरा जी क्यूं जले।'

खर्च करने वाला जब अपनी मर्जी से खर्च करता है और दूसरा जलता है, तब यह कहा जाता है कि—तेली का तेल जले, तेरा जी क्यों जले।

'देशा म्हं देस हरियाणा, जित दूध-दही का खाणा।'

जितने भी देश हैं उनमें हरियाणा समृद्धशाली और खुशहाल हैं। जहां पर दूध और दही का भण्डार है।

'घोड़ा राज अर बैल अनाज।'

इतिहास के उस युग की गाथा कहती है जब फौज में अश्व का बड़ा मान था और बैल किसान का पांव था।

एक रोठी को बैल बिका, और पैसा विक गया ऊंट।
चौतीसा ने खो दिया, भैंस-गा का बंट।।
चौतीसा ने चौंतीस मारे, जिये बैस कसाई।
ओह मारे तकड़ी अर उसने छुरी चलाई।।

एक बार चौंतीसा नाम का अकाल इस प्रदेश में बड़ी भयंकरता से पढ़ा था। अकाल की भयंकरता यहां तक थी कि एक रोटी को बैल बिका और ऊंट एक पैसे में। भैंस और गाय का वंश समाप्त हो गया। चौंतीसा अकाल में चौंतीस जातियां मर गईं, चव दो जातियां शेष बचीं, कसाई और बनियां। बनियां अपनी तराजू से कमाता और कसाई छुरी चलाता।

'हल लगा पाताल, तैं फूट गया काल'

गहरी जुताई से फसल अच्छी होती है।

'विआही दगा दे दे, पर बाह दगा ना दे।'

विवाहिता पत्नी धोखा दे सकती है, परन्तु जुताई (बाही) कभी धोखा नहीं देती।

'पौन चले उतरा, अनाज खाये ना कुतरा'

यदि उत्तर दिशा की पवन चलेगी तो अनाज इतना अधिक होगा कि कुत्ते भी न खायेंगे।

'गाय नारी अर भैंस सारी'

अर्थात् हरियाणा में गाय क्याणी (मध्यम) होती है और भैंस भारी।

'एकला मृग, दूजा साल, झोटे चड़या मिले गुआल।
तीन कोस लग मिल जाय तेली, तो मौत निमाये सिर पर खेली।'

यदि यात्रा करते समय जंगल में एक मृग मिले, दो सांप मिलें, भैंसे पर चढ़ा गुआला मिले और यात्रा के तीन कोस तक तेली मिले तो निश्चय ही मृत्यु हो। ऐसे दृश्य अपशकुनकारी हैं!

'कंटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।
कर्मों का मारा फिरे, बांगर बीच फकीर।।'

हरियाणा में कंटक अधिक हैं, मनुष्य कठोर प्रकृति के हैं और पानी भैंस के मूत्र जैसा है। ऐसे बाँगर प्रदेश में फकीर का दुभाग्य है।

'सत्तावणियां जूता'

यह मुहावरा १८५७ के सिपाही विद्रोह से सम्बन्धित है। बहुत से जाटों के यहा ऐसे पुराने जूते मिलते हैं जो दूसरों के हैं और जिनसे उन्होंने अपने शत्रुओं को १८५७ में पीटा था।

'भाउन की लूट'

राजा भाउन गुजरात के राजा थे। उनको धोखे से हराया गया और राज्य को लूटा गया था। वही पुरानी बात इस मुहावरे में अवशिष्ट है।

'वाच्छी का काका'

यह मुइावरा सरलता एवं भोलेपन का प्रतीक है जिसका अर्थ होता है अत्यन्त सीधा।

'रांड का सांड'

विधवा का पुत्र। जिस पर किसी का अनुशासन नहीं। इस कारण वह सांड की तरह उदंड और उच्छृंखल हो जाता है। उसे रांड का सांड कहते हैं।

इसी प्रकार हरियाणा के लोक साहित्य में अनेक मुहावरे और लोकोक्तियां जातिपरक, देश या स्थानपरक, इतिहासपरक, कृषिपरक, नीति-गर्भित, व्यंगात्मक, संस्कार प्रथाओं से संबंधित है जिनके वैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विश्लेषण की आवश्यकता है। इनमें हरियाणा का इतिहास बोलता है।

पिता और पुत्रियां

-- मधुकर

भ्रान्तियां
यथार्थ की पुत्रियां हैं।
यथार्थ
हर पिता की भांति
उन्हें
समस्याओं
समाधानों
तथा
अश्रुकणों से सजाकर विदा देता है।

समवेत गोष्ठी में

'व्यंग्य' विधा के निकष पर

—श्रीकांत चौधरी

'व्यंग्य' अभी हाल के वर्षों में सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा के रूप में उभर रहा है, किन्तु साहित्यकारों ने व्यंग्य के महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकारते हुए 'व्यंग्य' के विधागत रूप 'होने' पर परस्पर भिन्न मत प्रगट किए हैं। राजधानी भोपाल की प्रख्यात, साहित्यिक संस्था 'समवेत' ने 'व्यंग्य' के संबन्ध में उसकी साहित्यिक पहचान और परख को लेकर एक महत्वपूर्ण गोष्ठी का आयोजन किया। वक्ताओं के समक्ष मूल प्रश्न 'व्यंग्य' की रचना प्रक्रिया और सामाजिक प्रतिबद्धता को लेकर, उसके विधा होने या न होने का था। गोष्ठी की अध्यक्षता प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने की। बहस में हिस्सा लेने वाले थे, सर्व श्री अक्षय कुमार जैन, सोमदत्त गर्ग, अनिल कुमार, रामेश्वर सं ीत, वेणु गोपाल, प्रभाकर श्रोत्रिय, सुशील त्रिवेदी, रामप्रकाश त्रिपाठी और मनमोहन बदारिया।

श्री परसाई—

श्री हरिशंकर परसाई ने विषय का प्रवर्तन करते हुए 'व्यंग्य' की परम्परा पर प्रकाश डाला। विस्तार से उसका ऐतिहासिक पक्ष स्पष्ट किया। 'व्यंग्य' को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—व्यंग्य, मसखरेपन, हास्य या उपहास जैसी कोई चीज नहीं है। व्यंग्य का उत्स कहीं न कहीं, वेदना में है, यों भी जब कोई व्यक्ति अनुपात हीनता की या अपेक्षित व्यवस्था से हटी हुई, कोई बात देखता है तो सहज ही वह हंस पड़ता है। व्यंग्यकार यद्यपि इसी अनुपात-हीनता

या असामंजस्य को पकड़ने की कोशिश करता है फिर भी, वह केवल हास्य की सृष्टि के लिए नहीं लिखता। उसे रोग, रोग की स्थिति, लक्षण और निदान, सभी के लिए लिखना पड़ता है। निराश वह नहीं है। न ही वह उपहास मात्र में विश्वास करता है।

व्यंग्यकार समाजचेता है। वह इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि पतन-शील समाज का लेखक, उपहास करने में विश्वास करता हैं। व्यंग्यकार उपहास नहीं करता, पाठक की चेतना पर चाबुक चलाता है। मुस्कराते उसे रुला देता है। जिस पाखंड या मिथ्याचार पर वह कलम चला रहा हैं, उसके प्रति कान्शस (सचेतन) कर देता है, कुल मिला कर यह कि वह समस्या की तह में जाने की कोशिश करता है। दरअसल 'व्यंग्य' एक गंभीर विधा है।

व्यंग्य की गंभीरता को प्रतिपादित करते हुए श्री परसाई ने कहा—"व्यंग्यकार दायित्व बोध के कारण स्वयं की जिम्मेदारी समझता है। गंभीर मनोजगत की उपज होने के कारण व्यंग्य, मानवीय सहानुभूति और करुणा का ऊंचे स्तर का 'फार्म' है। व्यंग्यकार उस प्रसव पीड़ा को स्वयं भोगता है, और मुस्कान के साथ लोगों को उस पीड़ा का बोध कराता है। पाठक को तुष्ट करने के लिए वह नहीं लिखता वह, अच्छे समाज; बृहत्तर इंसान पैदा करने अथवा उनके निर्माण में योगदान करने के लिए लिखता है। वह दर्द को वहां तक जाकर छूता है। इससे सिद्ध होता है कि उसके अंदर करुणामयी अंतर्राष्ट्रीय एकता प्रवहमान है। उसे मौजूदा हालत की चिंता है, कन्सर्न (उद्विग्नता) है और निदान के वह प्रतिबद्ध हैं। अतः व्यंग्यकार को सिनिक, (दोषदर्शी) छिद्रान्वेषी, निराशावादी, आपरेशन करने वाला, चाकू चलाने वाला या बखिया उधेड़ने वाला कहने का कोई मतलब नहीं है।" परसाई जी ने इस बात पर दुख भी व्यक्त किया कि 'व्यग्य' की आलोचना के लिए कोई भाषा या शब्दावली हिन्दी में विकसित नहीं की गई। प्राध्यापकीय लेखन पर ही यह आलोचना आधारित होकर रह गई है।

श्री सुशील त्रिवेदी—

श्री त्रिवेदी ने बहस की शुरूआत करते हुए प्रश्न उठाया कि "वे कौन से पैमाने हैं जिनसे मापकर हम 'व्यंग्य' को निबंध, कथा, या अन्य विधाओं से प्रथक कर सकते हैं?" परसाई जी ने व्यंग्य को 'तत्व' निरूपित करते हुए यह स्वीकार किया कि यह तत्व अन्य विधाओं में भी मिल सकता है। सुशील त्रिवेदी ने पुनः सोदाहरण कहा कि चित्रकला विकास के चरणों में समानांतर ही

चलती है और इसी के तहत क्या 'कार्टून' (हास्य चित्र) एवं केरीकेच्योऽर (व्यंग्य चित्र) ने चित्रकला में कहीं स्थान प्राप्त कर लिया है जैसा कि साहित्य में व्यंग्य ने किया है ?' तो परसाई जी ने सहमति प्रगट की।

श्री प्रभाकर श्रोत्रिय—

प्रभाकर ने साफ तौर पर व्यंग्य की स्वतंत्र विधा मान लेने की सहमति प्रकट की, लेकिन वे स्वयं व्यंग्यकार से यह जानना चाहते थे कि 'व्यंग्य' स्वतंत्र विधा कैसे है ? उनका तर्क था कि व्यंग्य का कार्य 'स्ट्रक्चर' (संरचना या ढांचा) नहीं है। जब कि विधा 'स्ट्रक्चर' में होती है। महाकाव्यों में कथात्मकता होते हुए भी वे काव्य ही रहते हैं। व्यंग्य को विधा बनने के लिए प्रभाकर के अनुसार–'स्ट्रक्चर' तैयार करना प्राथमिक आवश्यकता है।

श्री अनिल कुमार—

अनिल कुमार, प्रभाकर से असहमत थे, उनके अनुसार 'व्यंग्य' एक मुद्रा है। आपने परसाई जी के व्यंग्यों को प्राय: ललित निबंध की कोटि में मानने की राय प्रकट की। आपने आगे व्याख्या करते हुए कहा कि–"परसाई जी द्वारा अन्य घटनाएं तो प्रतीक भर होती हैं। कथा सो उसकी 'स्प्रिट' (तत्व) में ही अंतर्निहित होती है 'धर्म' के नाम पर कार्य चौखटा अभी व्यंग्य के पास नहीं है।"

श्री प्रेम त्यागी––

श्री प्रेमत्यागी ने भी 'व्यंग्य' के स्वतंत्र विधा के रूप से असहमत होते हुए कहा कि––"व्यंग्य साहित्य रूप हो सकता है, जिसके दर्शन हम कथा, निबंध में भी कर सकते हैं!" आपने परसाई जी की कहानियों का जिक्र करते हुए विनोद किया कि हम परसाई को कहानीकार क्यों न मानें ? इस पर तपाक से प्रति-प्रश्न किया प्रभाकर ने कि––आप उन्हें व्यंग्यकार कहते क्यों हैं ?

श्री वेणु गोपाल––

वेणुगोपाल इस विवाद से ऊब रहे थे शायद. कम से कम चेहरे पर के भाव कुछ ऐसे ही थे। इन्होंने बहस को एक नया घुमाव दे दिया। आपने पूछा कि आप लोग व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने के चक्कर में क्यों हैं ? आपने किसी प्रकार की गंभीर व्याख्या में न पड़ कर चालू मुहावरेदार भाषा में कहा कि––"व्यंग्य वैसे तो सिर्फ 'व्यंग्य' है लेकिन इसके अतिरिक्त व्यंग्य क्या है ? यह चन्द विश्वविद्यालयी प्राध्यापकों की समस्या है।"

श्री अक्षय कुमार जैन--

अध्ययन की समस्या पर व्यंग्य करते हुए आपने कहा कि--अध्ययन का विश्वविद्यालयों में जो रूप है उसके सोच में सब कुछ फिट हो जाता है। ठीक समाजवाद की टोपी जैसी, जो हर एक सिर पर फिट बैठ जाती है। आपने मूल विषय की ओर आते हुए कहा कि -"पहले 'व्यंग्य' अनायास रचनाओं में आता था, अब तो सायास 'व्यंग्य' लिखा जा रहा है, सामाजिक एवं विधागत प्रतिबद्धता के तहत। अक्षय का मत था कि यदि 'स्प्रिट' के आधार पर क्लासिफिकेशन (वर्गीकरण) हो तो व्यंग्य को विधा मान लेने में कठिनाई नहीं होगी। लेकिन मुश्किल यह कि 'फार्म' (आकार) की बात पहले की जा रही है 'स्प्रिट' की बाद में। वैसे विधिवत व्यग्य लेखन १०- २ वर्षों से किया जा रहा है, इसके पहले नामकरण की समस्या ही नहीं थी।"

श्री सोमदत्त गर्ग—

श्री अक्षय के विचारों से कुछ हद तक सहमत होते हुए सोमदत्त गर्ग ने कहा कि—"सारे लेखन के सामने 'लेबलिंग' (नामकरण) का संकट है। लोगों के सामने लेबिल (नाम) तैयार है उनको केवल यह सोचना है कि किस रचना पर कौन सा लेबिल चस्पां कर दें।" आपने रचना की उपरी आधार पर व्याख्या को गलत ठहराते हुए कहा कि—"रचना को 'डिस्कवर' (अनुभव) करना चाहिए, जो कि नहीं होता है, अतः विधा की बहस बेमानी है।"

श्री राम प्रकाश त्रिपाठी--

नकारात्मक मत से हट कर श्री त्रिपाठी ने कहा कि—"फार्म की जकड़बंदी से, कविता, कहानी, निबंध आदि सभी बाहर आ रहे हैं, इनके बीच शिल्पगत अंतर कम हो गया है। कविता, कहानी या निबंध के बीच 'स्प्रिट' या 'टेक्स्चर' (गटन) का अंतर है। तत्वों के आधार पर मूल्यांकन करें तो हमें कहानी में, नाटक, निबन्ध में किस्सागोई और कविता में कहानी के तत्व मिल सकते हैं। स्थापित साहित्य विधाओं ने स्वयं अपने चौखटे तोड़े हैं तो व्यंग्य को क्यों उसमें फंसाया जाय ?

श्री रामेश्वर संगीत—

रामेश्वर ने सीधा प्रश्न उठाया—आलोचना की भाषा विधागत कारण से अलग होती है, क्या कहानी, कविता, नाटक, व्यंग्य सब के लिए समीक्षा की

भाषा अलग होती है ?' रामेश्वर जी ने शायद परसाई जी के समीक्षात्मक अभाव के संकेत से अपना प्रश्न जोड़ा था ।

श्री हरिशंकर परसाई—

परसाई जी ने विदेशी साहित्य के अनेकों प्रबल उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'व्यंग्य का तत्व अलग बात है, विधागत समीक्षा अलग बात ।'

विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर परसाई जी ने अपना वक्तव्य लोचदार बनाए रखा । आपने व्यंग्य को 'स्प्रिट के रूप में स्वीकार करते हुए भी उसे विधा मान लिए जाने पर भी अपनी सहमति दी ।

इस प्रश्न पर कि––'विधा का ताल्लुक 'स्ट्रक्चर' व्यंग्य मूलक हो उसे ही आप व्यंग्य मान लीजिए । आपने कहा––हमारे पास अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य है । 'व्यंग्य' को पाठकों की तलाश जैसी समस्या नहीं है, हम अपनी बात उन तक पहुँचा सकते हैं ।'

आपने बहस को समापन की सीढ़ी पर पहुंचाते हुए कहा––'नामकरण की या विधा पर बहस की जरूरत अध्येता की है, व्यंग्यकारों को इससे क्या फर्क पड़ता है ?' आपने अंत में कहा––'कि व्यंग्यकार भी पहली बार सोच रहे हैं कि हम क्या क्यों और कैसे लिख रहे हैं ।'

अध्यक्षीय भाषण के साथ गोष्ठी की यह महत्वपूर्ण बहस समाप्त हुई । 'समवेत' की यह गोष्ठी किसी ठोस निष्कर्ष को लेकर समाप्त नहीं हुई, जैसे कि हर गोष्ठी की यह स्वाभाविक आदत होती है, लेकिन 'व्यंग्य' जैसे महत्वपूर्ण साहित्यिक तत्व या विधा को लेकर किए गये वाद विवाद से अनेक महत्व-पूर्ण पहलू उजागर हुए, अनेकों भ्रांतियों का कुहासा साफ हुआ और नए आयाम पैदा हुए । व्यंग्य के संबंध में इस गोष्ठी का अत्याधिक महत्व, असंदिग्ध है ।

भूस्वर्ग

—बलजिन्नाथ पण्डित

कालिदास ने कुमारसम्भव में त्रिलोक सुन्दरी श्री पार्वती जी के विषय में इस प्रकार से कहा है—

> सर्वोपमाद्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेशितेन ।
> सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नाद् एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ।।

अर्थ— 'ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ब्रह्मा जी के हृदय में यह इच्छा हो गई हो कि 'मैं समस्त सौन्दर्य को एक ही शरीर में देखूं' और इसी कारण से उन्होंने सुन्दर शरीरों के उपमान बने हुए चन्द्रमा, इन्दीवर, खञ्जन, कमल, पल्लव, पुष्प, लता, कदली स्तम्भ, तामरस आदि द्रव्यों को इकट्ठा करके और यथोचित क्रम से उचित उचित स्थान पर जोड़ जोड़ कर बड़ी ही सावधानता से और यत्न से उस पार्वती के शरीर का निर्माण उन्हों ने उन उपमान द्रव्यों से ही किया। तभी तो उस शरीर में इतने अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि हुई।'' ठीक इसी तरह से हमें ऐसा ही प्रतीत होता है कि ब्रह्मा जी के हृदय में समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य को एक ही स्थान पर देखने की इच्छा हुई और इसी कारण से उन्हों ने उस सौन्दर्य के समस्त प्रकारों को एकत्रित करके और उन्हें अत्यन्त कलात्मक ढंग से सुन्दर और चित्ताकर्षक क्रम से जोड़ कर कश्मीर मण्डल का निर्माण किया। तभी तो पहले गगनचुम्बी हिममण्डित और सर्वतः शुभ्र पर्वतमालाओं के एक विशाल प्रकार का निर्माण किया। उस प्रकार के साथ साथ चीड़ और देवदार के वृक्षों की सदैव हरी भरी रहने वाली वनराजियों से सुशोभित पहाड़ों की अनन्तकार लड़ियों का भीतर बाहर दोनों ओर से जोड़

दिया। उनके साथ ही साथ अखरोट, चिनार, खोबानी, सेब, नाशपाती आदि विशाल शाखाओं वाले वृक्षों से ढकी हुई छोट छोटी पहाड़ियों और अधित्यकाओं तथा उपत्यकाओं को जोड़ जोड़ कर वे समतल भूमि पर आगए। उन्हों ने इन ऊंचे पर्वतों, घने वनों, छोटी बड़ी पहाडियों और उपत्यकाओं को भी अत्यन्त विचित्र विचित्र आकारों में विभक्त करके रखा। इन को इस सुविचित्र ढंग से विभक्त करने के लिए बीच बीच में गहरी घाटियों का निर्माण किया। उन घाटियों को भी कहीं विशाल और कहीं तंग, कहीं सीधे और कहीं टेढ़े रूप दे-देकर वैचित्र्य को और भी बढ़ा दिया। इस तरह से ये पर्वतमालाएं और इन की शाखाएं और प्रशाखाएं तथा अधित्यकाएं और उपत्यकाएं देखने वाले के नेत्रों को अपार आनन्द देने में समर्थ बन गईं। फिर ब्रह्मा जी को दर्शकों के श्रवण सुख का जब विचार मन में आया, तो उन्हों ने एक ओर से इन वन राजियों में उनचासों पवन देवताओं को सतत गति से और विविध ढंग से सञ्चार करने की आज्ञा दी और दूसरी ओर से वरुण देव के द्वारा कलकल ध्वनि से अलौकिक श्रवण सुख का प्रदान करने वाली अनन्त प्रकार की गतियों द्वारा नाचती, उछलती, कूदती तथा दिव्यातिदिव्य संगीत का सृजन करती हुई और अनेक वर्णों के जल भरी हुई विविध आकार वाली अमृतवाहिनी नदियों का निर्माण करवाया। नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर की ये छोटी बड़ी असंख्य नदियां तो असंख्य देवताओं की शक्तियां ही हैं जो कश्यप मुनि की कामना को पूरा करने के लिए नदियों का रूप धारण करके कश्यप के इस सुविचित्र देश में प्रकट हो गईं। इन पर्वतीय नदियों की श्रवणसुभग और दृष्टि प्रलोभक तथा हृदयाह्लादक दिव्य सुषमा का अनुभव करते हुए नास्तिक जन भी पुराणों के इन आख्यानों पर विश्वास करते हुए इन को सचमुच देवलोक की देन ही समझने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

इन पर्वतीय प्रदेशों में मानव अनेकों भूमिकाओं में अनेकों प्रकार की जल-वायु का आनन्द लूट सकता है। उसे यहां ध्रुवों के जैसे जल-वायु से ले कर समशीतोष्ण जल-वायु तक के पृथ्वी के विभिन्न कटिबन्धों में मिल सकने वाले आह्लादों की प्राप्ति हो सकती है। बहुत सम्भव है कि महाकवि कालिदास ने कश्मीर देश के साथ आंशिक समता रखने वाले किसी देश में रह कर ही पर्वतों और बादलों की दिव्य क्रीड़ा का अनुभव करके इस प्रकार से उसका वर्णन किया हो—

> आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
> उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते सानूनि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥

अर्थ—"बादल तो हिमालय पर्वत के कटिप्रदेश ही के साथ साथ विचरण करते हैं। तो यहां रहने वाले सिद्ध जन कभी कभी हिमालय की निचली चोटियों पर बैठ कर बादलों की छाया का आनन्द लूटते हैं। परन्तु ऐसा करते हुए यदि कभी उन्हें वर्षा सताए, तो धूप सेकने के लिए झट उसके ऊपर के शिखरों पर चढ़ जाते हैं, जहा सदैव धूप रहती है, अर्थात् जिन के ऊपर बादल प्रायः चढ़ते ही नहीं।" कश्मीर के निवासी मानव वर्ष में अनेक अनेक बार हिमालय की इस धूप और मेघ की लीला का अनुभव करते रहते हैं। पर्वत-मालाओं के कटिप्रदेशों के साथ साथ संचार करने वाली मेघमालाओं के दृश्य की आह्लादकता का अनुभव भी वे बहुत बार करते रहते हैं।

संसार में पर्वत मालाओं, हिममण्डित शिखरों, घने वनों से ढके पहाड़ों तथा पहाड़ियों और कण्डी के प्रदेशों के सौन्दर्य को मानव कश्मीर से बाहिर भी अनेकों स्थानों पर देख सकते हैं। परन्तु इन सभी प्राकृतिक सौन्दर्य के अंगों के कलात्मक विन्यास की निपुणता को प्रजापति ने जैसा कश्मीर मण्डल में दिखाया है, वैसा संसार भर में कहीं भी नहीं दिखाया है। कश्मीर पर्वतमालाओं के कलात्मक आकार, प्रकार आदि का, उन में अनुभूयमान सूर्योदय और सूर्यास्त की दिव्य छटा की सौन्दर्य विभूति का तथा उनमें समीप विद्यमान हिमराजियों, वन श्रेणियों, फलोद्यान समूहों और शस्य श्यामला भूमि का जो अनुपम कलात्मक क्रमिक विन्यास है उस की शोभा की विभूति संसार भर में अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आती है।

संसार में देखा जाता है कि पहाड़ पहाड़ ही होते हैं और मैदान मैदान ही होते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में मैदानी सौन्दर्य के दर्शन नहीं हो सकते और मैदानों में ही सदैव रहने वाले मानव की बुद्धि में तो पहाड़ की कल्पना भी नहीं आ सकती। परन्तु परमेश्वर के सृष्टिनैपुण्य ने कश्मीर मण्डल को एक साथ पहाड़ और मैदान के आकार में प्रकट कर के रखा है। पहाड़ों के प्रकार के बीचों बीच विद्यमान कश्मीर-मण्डल की समतल भूमि एक सुविशाल मैदान है। पर्वतीय प्राकारों के भीतर विद्यमान, लहलहाती, शस्य श्यामला और सुविशाल हरियाली से आंखों को आह्लाद देने वाले और विविध आकार की गतियों द्वारा बहती हुई अनेकों छोटी बड़ी नदियों द्वारा विचित्र श्रवण सुख प्रदान करने वाले कश्मीर मण्डल के दर्शन करता हुआ और पंजाब के ग्रीष्म सन्तप्त मैदानों के साथ इस अनुपम देश की तुलना करता हुआ मुगल सम्राट् सहसा चिल्ला उठा था—

अगर फिरदौस बर रूये ज़मीं अस्त ।
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त ।।

अर्थ--"यदि स्वर्ग पृथ्वी तल पर कहीं भी है, तो निःसंशय वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।" आज से बीस वर्ष पूर्व जब पर्यटक जुलाई के मास में बानिहाल मार्ग से आकर पीरपंजाल पर्वत की पुरानी सुरंग में से इस पार पहुंच कर पर्वत श्रेणियों के दिव्यातिदिव्य प्रकार के भीतर विद्यमान हरे हरे और साँवले सांवले, लहलहाते हुए धान के क्षेत्रों की क्षितिज तक फैली हुई, चमत्कार कारिणी और नेत्रों को अपूर्व आह्लादके समुद्र में निमग्न करती हुई सुषमा का प्रथम दर्शन करता था, तो सच मुच उस के हृदय में भी मुगल सम्राट् के ही जैसे भावों का उदय होता था। वर्तमान काल की जवाहर सुरंग के मुख से देखे जाने वाले कश्मीर मण्डल के दृश्य में इतनी विशालता नहीं है। अतः उस में इतनी आश्चर्यकारिता भी नहीं। वर्तमान सुरंग ७००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है, परन्तु पुरानी सुरङ्ग ९००० फुट की ऊंचाई पर थी। वर्तमान सुरंग का द्वार पर्वत की भुजाओं के बीच में छिपा हुआ है, अतः कश्मीर की सुषमा की विशालता को देखने नहीं देता। प्राचीन सुरंग का द्वार तो पर्वत के वक्ष-स्थल पर था, अतः वहां से दृष्टि पथ का ज़रा भर भी निरोध नहीं होता था। यदि संसार भर के धर्मग्रन्थों में कहे हुए स्वर्ग के सौन्दर्य को मनुष्य पढ़े और फिर वह किसी भी पर्वत शिखर से कश्मीर मण्डल के प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन करे, तो अवश्य ही उसके हृदय में भी मुगल सम्राट् के ही जैसे भावों का उदय हो जाता है। लहलहाते धान के खेतों से मण्डित शस्य श्यामला भूमि के दर्शन बंगाल, बिहार आदि प्रदेशों में भी होते हैं। परन्तु वहां एक मात्र धान्य क्षेत्रों ही का सौन्दर्य दीखता है। वहां केवल लहलहाते विशाल मैदानों के ही दर्शन होते हैं। परन्तु यहां के धान्य खेत केवल खेत ही नहीं। वे एक रमणीय उद्यान की शोभा को भी साथ ही साथ धारण करते हैं। मैदान के धान के खेतों की पृष्ठ भूमि एक मात्र नील गगन ही बना रहता है; परन्तु यहां ऊपर से नील गगन, चारों ओर से हरित पर्वतमालाएं, उनके बाहर गगन चुम्बी हिमाच्छादित शैलश्रृङ्गों की श्रेणियां और उनके ऊपर भी प्रातः सन्ध्या और सायं संध्या की सुनहरी किरणों के समूहों की छटा का दिव्य वैभव तथा खेतों के बीच बीच में जहाँ तहां कल कल करती हुई मुखर पहाड़ी नदियों का स्वाभाविक दिव्य संगीत तो कश्मीर मण्डल को किसी साधारण लीलोद्यान की ही नहीं, अपितु भगवान् महेन्द्र के नन्दन नामक त्रिलोक प्रसिद्ध क्रीडोपवन की शोभा का प्रदान करते रहते हैं। अतः मुगल सम्राट् ने जो कुछ कहा था, सर्वथा यथार्थ हीकहा था।

प्राकृतिक सौन्दर्य की एक कमी कश्मीर मण्डल में अवश्य रहती, यदि प्रजापति की सृष्टिकला की निपुणता में कोई कमी होती। कश्मीर देश समुद्र से बहुत दूर है। अतः समुद्र की तरङ्गों के तथा अपार जल की दिव्य श्यामलता के सौन्दर्य की न्यूनता इस देश में अवश्य ही रह जाती। परन्तु प्रजापति के कलानिपुण हाथ ने इस देश में वुल्लर और डल जैसे झीलों का निर्माण करके उस कमी को अंशतः पूरा कर दिया है। समुद्र की प्रचण्डता के सौन्दर्य का दर्शन यद्यपि इन झीलों में नहीं हो सकता, परन्तु फिर भी लहरों और कल्लोलों का, नीलवर्ण अपार जल राशि का, स्वच्छ जल पर छिटकने वाली दुग्ध धवल चान्दनी की छटा का, जल में प्रतिबिम्बित तारा मण्डल के मनोहर दृश्य का अपूर्व सौन्दर्य इन झीलों में अवश्य दृष्टिगोचर होता हुआ दर्शक के हृदय को आह्लाद से विभोर करता है। जल राशि के भीतर पड़ने वाले पर्वतमालाओं के प्रतिबिम्ब का तथा विविध प्रकार के कमल, कुमुद आदि पुष्पों की विभूति का चमत्कार जो इन झीलों में मानव दृष्टि को प्राप्त होता है, वह समुद्र की सौन्दर्य विभूति की अपेक्षा इन के कोमल सौन्दर्य के वैभव की एक विशिष्टता को भी जतलाता है। फिर इन झीलों के स्फटिक स्वच्छ पानी में जो नौका बिहार का आनन्द उपलब्ध होता है, समुद्र के भीषण वैभव में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। डल तो झील ही है। परन्तु वुल्लर को यदि छोटा सा समुद्र भी कहें तो अधिक अत्युक्ति नहीं होगी। मानसबल के आकार प्रकार को देख कर प्राचीन कश्मीरियों ने उसे जो 'क्षुद्रकमानसम्' अर्थात् 'छोटा मानससरोवर' नाम दिया था, वह यथार्थ ही है। फिर कौन्सर नाग, गङ्गाबल, शेषनाग आदि पर्वतीय झीलों में भगवान नारायण के क्षीरसागर की सुषमा का दर्शन भी होता है। तो सक्षेप से जल, स्थल, वन, वृक्ष, शस्य, हिम आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ इस देश को सच मुच स्वर्गतुल्य बना गए हैं।

कश्मीर की शस्य श्यामला भूमि को देख कर पर्यटक को आश्चर्य हो सकता है कि ऐसी उर्वरा भूमि में दारिद्रय क्यों छाया रहता है। उसका एक कारण यह है कि मानव ने अभी तक इस भूस्वर्ग की दिव्य सुन्दरता को और धन धान्य समृद्धि को बढ़ाने का पर्याप्त यत्न नहीं किया और कहीं कहीं उसे घटाने की चेष्ठाएं भी वह करता ही रहा। यहां की दरिद्रता का दूसरा कारण वह है जिसे बाहरी पर्यटक प्रायः देखते ही नहीं। वह यह है कि कश्मीर की भूमि वर्ष में चार मास शीत काल के प्रकोप के कारण घास का एक तिनका भी नहीं उगाती है। यह भूमि लगभग चार मास साग, सब्जी, पुष्प मात्र ही उगाती है। शेष चार ही मास अन्न और फल आदि देती है। परन्तु यदि

उन चार महीनों में ऋतु अनुकूल रहे, तो यह भूमि उतना अन्न अवश्य ही देती है, जितने से यहां के निवासी जन वर्ष भर गुजारा करके कुछ बचा हुआ भाग आस पास के प्रदेशों को भी भेज सकते हैं। शीतकाल के लिए लोग अपने घरों के भीतर अपने लिए अन्न, साग, सब्ज़ी, लकड़ी, कोयले आदि और घरेलु पशुओं के वास्ते घास, चारा, खली, आदि का संग्रह करके रखते हैं। अग्निदेव की सतत उपासना करते हुए, घरों के भीतरी भागों को गर्म रखते हुए और बाहर मीलों तक फैले हुए हिम के शुभ्रातिशुभ्र वैभव के दृश्य से आह्लादित होते हुए सुख से बैठे रहते हैं। उन्हें काम काज की कोई चिन्ता नहीं रहती है। एकान्त में सुख से बैठ कर, अध्ययन, अध्यापन आदि का काम तथा काव्यों और शास्त्रों के निर्माण का काम और योग आदि के अभ्यास की साधना पर्याप्त सफलता-पूर्वक कर सकते हैं। इस ऋतु में मानव को एकाग्रता और तन्मयता अनायास ही हो जाती है। ऐसा सम्भव है कि कश्मीर का एकाकार दीर्घ दीर्घतर शीत काल ही यहां के विद्वानों को मानव हृदय के और प्रकृति देवी के कोमल रहस्यों की खोज की ओर प्रवृत्त करता रहा और उसी के फल स्वरूप इस देश में अलङ्कार शास्त्र जैसे कोमल-कला-परिपूर्ण विषयों पर नित्य नई खोज की जाती रही। इस शास्त्र के दो तीन प्रमुख लेखकों के कुछ एक ग्रन्थों को छोड़कर इस के शेष सभी ग्रन्थों का निर्माण कश्मीर मण्डल में ही हुआ। "ध्वनि" जैसे सुकोमल और सुसूक्ष्म सिद्धान्त का आविर्भाव और विकास कश्मीर मण्डल में ही हुआ। यहां के दार्शनिकों ने मुमुक्षु जनता के लिए एक ऐसे मार्ग की खोज की, जिस में भगवत् प्राप्ति के लिए श्मशानों में निवास करने की यम, नियम, प्राणायाम आदि हठ योग की, वैराग्य और सन्यास जैसे रूखे साधनों की तथा कृच्छ, सान्तपन चान्द्रायण, आदि कठोर व्रतों के नियमों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। साधक अपने घर में रहता हुआ हो, बाल बच्चों के सहवास के सुख को न छोड़ते हुए ही तथा अपने दैनिक व्यवसाय को ठीक ठीक चलाते हुए ही, शाक्त और शाम्भव आदि योगों की साधना द्वारा शरीर में रहते हुए ही मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। कश्मीर के इन दार्शनिकों के इस अद्भुत योग को राज योग कहना तो इस का अनादर करना है। इसे समस्त राज-योगों का भी राजाधिराज कहा जा सकता है। इस योग द्वारा मानव भुक्ति के साथ साथ ही मुक्ति की अनुभूति को भी प्राप्त कर सकता है। तो कश्मीर के दार्शनिकों का यह अद्वैत शैव दर्शन भी मानो एक स्वर्ग का ही दर्शन है। संक्षेपतः काव्यकला और दर्शन कला की दृष्टि से भी कश्मीर मण्डल भूस्वर्ग ही है। यहां के अन्य अन्य कलात्मक शिल्पों में भी स्वर्ग के सौन्दर्य की छटा

अवश्य ही विद्यमान है। तभी तो संसार भर में उन की लोक प्रियता सदा से ही चलता आ रही है।

यदि मानव-उद्योग को सन्मार्ग पर चलाया जा सके, तो कश्मीर देश को अतिशीघ्र सौ प्रतिशत स्वर्ग तुल्य बनाया जा सकता है। मानव उद्योग को साधु शासन ही सन्मार्ग पर चला सकता है। इसी कारण से मनु आदि स्मृतिकारों ने अपना बहुत सा समय और अपनी बहुत सी लेखनशक्ति राजधर्मों के उपदेश और व्याख्यान आदि की ओर लगा दिए हैं। कश्मीर भारत का एक अंग है। भारत में जो शासन प्रणाली चल रही है, वह एक ऐसी जन तन्त्री प्रणाली है जो अभी कौमार अवस्था में ही विद्यमान है। यदि भारत की जनता के अच्छे भाग्यों का उदय होन वाला हो, तो यह जन तन्त्री शासन प्रणाली यौवन दशा को प्राप्त करने तक अपने समस्त दोषों को हटाती हुई और वांछनीय गुणों का आदान करती हुई शुभ संस्कारों से अपने आप को सुसंस्कृत करती जाएगी। तभी सारे भारत का वास्तविक उत्थान हो सकेगा और तभी कश्मीर देश सौ प्रतिशत भूस्वर्ग बन सकेगा। तभी समस्त देश के भावी स्वर्ण युग का उदय हो सकेगा। शुभ और अशुभ शासन ही होता है। शासन शक्ति ही राष्ट्र की समस्त शक्तियों का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग सफलता पूर्वक करवा सकती है। तभी तो महाभारतकार ने कहा है—

"राजा कालस्य कारणम्"

अर्थात् अच्छे और बुरे समय के आने का कारण शासन ही होता है।

आडम्बर के प्रति क्षोभ

—श्यामलाल शर्मा

संस्कृति उन विश्वासों और परम्पराओं का समूह है जो हमें समाज से प्राप्त होता है और जिससे हमारे जीवन के कपड़े का ताना बाना बनता है। डोगरों के जीवन में अन्तर्मुखता आडम्बर हीनता और वास्तविकता से, तथा यथार्थता से अपने आप को बढ़कर बताने की भर्त्सना कूट कूट कर भरी हुई है। इस गुण को या (अवगुण को) क्योंकि कई स्थितियों में आवश्यकता से भी अधिक बढ़कर यह आत्महीनता की सीमा को छूने लगा है, डोगरी भाषा ने अपनी कहावतों में भारी विविधता से प्रदर्शित किया है। निम्नलिखित कहावतें इस भावना को इन रूपों में प्रकट करती हैं—

१ घर नईं कुत्ती ते गवै दी सोह।

(घर में तो कुतिया तक रखने की सामर्थ्य नहीं और शपथ गाय की लेता है।)

२ घर नईं फक्का ते गाओ डूमो गाओ।

(घर में अपने लिए अनाज मुट्ठी भर भी नहीं, परन्तु भाटों या गाकर मांगने वालों को कहता है कि गाओ तुम को खूब इनाम दूंगा।)

३ घर नईं सूत्तर ते जलाहें कन्ने डांगो डांग।

(घर में सूत का धागा तक नहीं और जुलाहों से झगड़ा हो रहा है कि कपड़े बनवाऊंगा तो ठीक समय पर दोगे कि नहीं ?

४ घर नईं दाने ते मा पीह्‌न गई दी।

(घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं और क्षुधा शान्ति के लिए माता कहीं से मांगने गई है परन्तु वह कहता है कि माता गेहूँ पिसवाने के लिए घराट (आटा पीसने की मशीन) पर गई हुई है।)

५ घर नईं चोपंड़ ते धियु दा नां थिह्न्दी।

(घर में तेल घी का नाम तक नहीं, और घरवालों ने लड़की का नाम 'स्निग्धा' रक्खा है।)

६ मा मोई पोहै दे पाले ते धियु दा नां रजाई।

(माता तो पोष मास की सरदी न सह सकने के कारण मर गई परन्तु कन्या का नाम रजाई रक्खा है।)

७ पल्लै नईं खिन्ध ते बिलङ आकड़ी दी।

(पास में तो ऊपर ओड़ने का पटका तक नहीं परन्तु कोरी अकड़ कितनी है।)

८ पल्लैं नईं धेला ते करदी मेला मेला।

(पास में फूटी कौड़ी तक नहीं परन्तु रट मेले जाने की लगा रक्खी है। बिना पैसे के मेला थोड़े ही देखा जा सकता। आनन्द थोड़े ही उठाया जा सकता है।)

९ पल्लै नईं फक ते जगन्नाथें दी तक्क।

(पास में खाने के नाम पर चावल क्या उसका छिलका तक नहीं, परन्तु शौक जगन्नाथ पुरी की यात्रा का चर्राया है।)

१० मा भठयारी ते पुत्तर फतेहखान।

(माता तो भठ झोंक कर मुश्कल से पेट पालती है परन्तु पुत्र फतेहखां नाम रखकर अकड़ दिखाता है।)

११ बब्बै नईं मारी पिद्दड़ी ते पुत्तर तीरन्दाज।

(पिता ने शिकार के नाम पर कभी पिद्दी तक नहीं मारी परन्तु पुत्र बड़ा निशाने बाज़ बना फिरता है।)

१२ माऊ नईं दिक्खेया त्रक्कला ते पुत्तर नेजेबाज।

(माता ने तो शस्त्र के नाम पर कभी सूत कातने वाला तकला भी नहीं देखा परन्तु पुत्र बरछियां और भाले बनाने की बातें करता है।)

१३ गंजी गटारी ते टीसी आल्हना ।

(एक गटारी दूसरे गंजी, परन्तु अपने बारे में यह मान कि सब उसी को पकड़ने के लिए लालायित हैं। इस लिए वृक्ष की सब से ऊंची शाखा पर अपना नीड़ बनाती है।)

१५ सिरै दा गंजी ते हत्थें च कांघियां।

(सिर पर बाल (केश) नहीं परन्तु हाथों में कंघियां ले रक्खी हैं। मानो केश प्रसाधन की हर समय आवश्यकता हो।)

१६ सौना जाड़ें ते सुखने सीस मैह्‌लें दे।

(सोने के लिए तो जंगल में डेरा है परन्तु सुपने शीश महल के लेता है।)

१७ खानी सुआह् ते डकार लाचियें दे।

(खाया निकृष्ट पदार्थ है परन्तु डकार लेकर जताता है कि खाद्य पदार्थ में मेवा पिस्ता बादाम और इलायची इत्यादि की बहार थी।)

१८ बुड्डी घोड़ी लाल लगाम।

(घोड़ी बूढ़ी हो चुकी है। वह शक्ति नहीं, गति नहीं। परन्तु लगाम रंगदार चढ़ा रक्खी है मानो नई घोड़ी हो।)

१९ बुड्डी गौ ते बच्छे कन्ने छड़प्पे।

(गाय बूढ़ी हो चुकी है परन्तु बछड़े नाचते कूदते हैं तो उनकी देखा देखी उछल कूद कर अपने आप को तरुण सिद्ध करने की चेष्टा करती है।)

२० लुण्डी चिढ़ी कपूरी नां।

(एक तो चिड़िया दूसरे दुम विहीन है परन्तु नाम कपूरमंजरी रक्खा है।)

२१ नां लछमी ते चुनदी गोह्‌टे।

(काम उपले पाथने का करती है परन्तु नाम रक्खा है लक्ष्मी देवी। धन दौलत की धात्री।)

२२ औंदा नईं 'ओं नमः' ते नां विद्याधर।

(पण्डिताई के नाम पर 'ओं नमः' भी नहीं जानता परन्तु नाम विद्याधर रक्खा है।)

२३ अक्खीं नईं लबदा ते नाँ नैनसुख ।

(आंखों से तो दिखाई नहीं देता परन्तु नाम नयनसुख रक्खा हुआ है ।)

२४ अक्खीं नईं लबदा ते नां चरागशाह ।

(आंखों से दिखाई नहीं देता परन्तु नाम 'चिरागशाह' (दीपक चन्द्र) दूसरों को रोशनी देने वाला रक्खा है ।)

२५ मन्तर नईं औंदा बिच्चूं दा ते हत्थ पांदा सप्पै गी ।

(बिच्छू के काटे का मंत्र तो जानता नहीं परन्तु सांप को पकड़ने का दावा करता है ।)

२६ तरनी आखदी में मरना, बुड्डी आखदी में खस्म करना ।

(युवती को तो मरने की चिन्ता है, परन्तु बुढ़िया को विवाह का शौक चर्राया है ।)

२७ कैंत नईं पुच्छै बातड़ी ते धन्न सुहागू नां ।

(पति तो बात तक नहीं करता, कुशल क्षम तक नहीं पूछता परन्तु नाम सौभाग्यवती है ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि डोगरों में आडम्बर के प्रति कितना क्षोभ है, कितना विद्रोह है, कितनी भर्त्सना है । डोगरी भाषा की समृद्धि का यह कितना सुन्दर उदाहरण है कि एक भाव को तीस एक ढंगों से प्रकट किया गया है ।
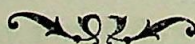
डोगरी कहानी—एक सर्वेक्षण

—मदन मोहन शर्मा
अनु० जितेन्द्र उधमपुरी

डोगरी कहानी के जन्मदाता श्री भगवत् प्रसाद साठे हैं। १९४७ ई० में श्री साठे की कहानियों का संग्रह 'पहला फुल्ल' प्रकाशित हुआ और इसी के साथ ही डोगरी कहानी का जन्म हुआ। 'पहला फुल्ल' के बाद १९५६ ई० तक डोगरी कहानियों की कोई अन्य पुस्तक न छप सकी। इस बीच में श्री धर्मचन्द प्रशांत और प्रो० राम नाथ शास्त्री ने कुछ एक कहानियां लिखीं परन्तु डोगरी कहानी को नया जीवन तब मिला जब कि सर्वश्री राम कुमार अबरोल, मदन मोहन शर्मा, वेद राही औा नरेन्द्र खजूरिया ने लिखना आरम्भ किया। 'पहला फुल्ल' के पश्चात श्रीमती ललिता महता द्वारा लिखित डोगरी कहानियों का दूसरा संग्रह 'सूई-धागा' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कहानियों को वास्तविक रूप से कहानियां कहना कुछ ठीक नहीं बैठता। इस कारण 'सूई-धागा' के प्रकाशन से डोगरी कहानी-क्षेत्र में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। १९५७-५८ ई० में डोगरी भाषा को चार अन्य कहानी संग्रह मिले। यह संग्रह हैं—'पैरें दे नशान', काले हत्थ, खीरला मानु' और 'कोले दिया लीकरां' और इन के लेखक थे सर्वश्री रामकुमार अबरोल, वेद राही, मदन मोहन और नरेन्द्र खजूरिया। इन चार कथाकृतियों को जिन में कुल मिला कर चौबीस कहानियां हैं, डोगरी कथा साहित्य के भव्यशाली भवन के आधार स्तम्भ कहा जा सकता है। डोगरी भाषा में अब तक चौबीस कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दूसरी भाषाओं की लगभग पचास कहानियों का अनुवाद डोगरी में उपलब्ध है। कुछ डोगरी कहानियों का दूसरी भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है' इस प्रकार हम पूर्णरूपेण अनुमान लगा सकते हैं कि पिछले पच्चीस वर्षों में

डोगरी साहित्य की फुलवाड़ी का यह पौधा ऊंचा ही नहीं उठा अपितु पूरी शक्ति और ओज से फलाफूला भी है। अब डोगरी साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है।

डोगरी के पहले कथाकार श्री भगवत प्रसाद साठे के अभी तक दो कहानी संग्रह छपे हैं। १९४७ ई० में छपे उनके प्रथम संग्रह 'पहला फुल्ल' में कुल ६ कहानियां सम्मिलित की गई थीं। पर वह पुस्तक चन्द एक के पास ही पहुँच पाई। 'पहला फुल्ल' का दूसरा संस्करण १९६७ ई० में प्रकाशित हुआ और इस नवसंस्करण में दो अन्य कहानियां भी मिला ली गई। साठे जी का दूसरा कहानी संग्रह 'खाली गोद' है जिस में लेखक की सतरह कहानियाँ हैं। यह पुस्तक १९७० ई० में छपी। इसे जम्मू कश्मीर कल्चरल अकाडमी का द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इन सभी कहानियों के अध्ययन-परीक्षण उपरान्त श्री साठे की कला के विषय में कुछ बातें साधारणतया कही जा सकती हैं—

साठे जी की कहानियों की जो बात विशेषतया पाठकवर्ग को प्रभावित करती है—वह है कहानीकार का भाषा पर विशेष अधिकार। डोगरी भाषा की मिठास, लोच, इसका मुहावरा, मानव हृदयों के सुन्दरतम और कोमल से कोमल भावों को प्रकट कर सकने और हास्य-व्यंग्य को पूरे अर्थों में मन तक उतारने के गुण—डोगरी भाषा की यह सभी विशेषताएं लेखक को उसके भाव-विचारों को सही अर्थों में प्रकट करने में सहायक सिद्ध होती हैं। और उनकी रचनाओं को रोचक बनाती हैं।

दूसरी बात, साठे जी की कहानियों में डुग्गर के ग्रामीण और पहाड़ी जीवन का प्रतिबिम्ब बड़ी सजीवता से झलकता है। हमारे लोगों के रसमों-रिवाज, उनके वहम, विश्वास, उनका दुख दर्द, धनहीनता, हमारे समाज की त्रुटियां और बुराइयां—इन सभी दशाओं से कहानीकार ने बड़े कलात्मक ढंग से परिचय कराया है।

और तीसर बात है कहानियों का वातावरण प्राकृतिक और मौलिक बनाने में श्री साठे का कमाल। कहानी 'पंजतारे दा फुल्ल' है या 'मसाहनी' जल्लू या 'सहारा' हो कि 'कमला ते सूर्ज' पाठक को ऐसा लगता है कि मानो वह अपने कमरे से निकल कर वैष्णों देवी के पहाड़ चढ़ रहा है, किसी खेत में खड़ा रहीम बीवी को पनघट से पानी का भरा मटका लाते देख रहा है या फिर 'पंजतारे दे फुल्ल' की नायका भानों के साथ हरे भरे मैदानों में भागती हुई गाये

बकरियों के पीछे दौड़ता चला जा रहा है। अपनी कहानियों के वातावरण को ऐसा प्राकृतिक और प्रभावपूर्ण बनाने के लिये श्री साठे किसी प्रवीण कलाकार की भांति शब्दों के सुन्दर चित्र बनाते हैं और पात्रों के मनोरंजक वार्तालाप द्वारा कहानी को आगे बढ़ाते चले जाते हैं।

यदि एक ओर कहानीकार की इन विशेषताओं से इंकार नहीं किया जा सकता तो दूसरी ओर पाठक की दृष्टि से उनकी रचनाओं का कमज़ोर पक्ष भी बच नहीं पाता।

कहानीकार साठे की शैली कथात्मक है, इसलिए उन की अधिकतर कहानियां 'आज की कहानी' से दूर और लोक कथाओं के बहुत निकट दिखलाई पड़ती हैं। 'पहला फुल्ल' की कहानियां—'अम्माँ', 'खड़जंतर', कुड़में दा लाह्मां' और 'पहला फुल्ल' उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती हैं।

कथात्मकता के कारण साठे जी की कहानियों के किरदार सर्वांगपूर्ण और जानदार नहीं बन पाये। पर यह पूर्णतया सत्य है कि उनके किरदार अपने रूपरंग और पहरावे के कारण निजी और जाने पहिचाने से लगते हैं। परन्तु कहानीकार अपने किरदारों के बाहरी रूप के बनाने संवारने में अधिक रुचि रखता है यही कारण है कि उनका भीतरीपन बहुत कम उजागर हो पाता है।

एक और बात, कहानीकार जिस प्रभावपूर्ण ढंग से कहानी का आरम्भ करता है उसी प्रभावशाली रूप से उसे अंत तक लेजाने में सफल नहीं हो पाता। प्राय: साठे जी की कहानियां मध्यावस्था तक पहुंचते-पहुंचते निर्जीव सी होने लगती हैं और उसके उपरांत कहानी लड़खड़ाती हुई, रेंगती हुई आगे को बढ़ती है।

इसके अतिरिक्त साठे जी की कहानियों में संतुलन और संक्षिप्तता की कमी प्रतीत होती है जिसके कारण वह चुस्ती पैदा नहीं हो पाती जो संक्षिप्त कहानी की पहली शर्त कही जाती है।

इन त्रुटियों के होते हुए भी इस सचाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि श्री साठे डोगरी कहानी के केवल जन्मदाता ही नहीं, उन्होंने तो डोगरी कथा साहित्य का बीज बो कर उसे बराबर सींचा भी है और इसे सदाबहार बनाने के लिए जितने परिश्रम और लगन से उन्होंने कार्य किया है उसे हमेशा सराहा जायेगा। उनकी कुछ एक कहानियां जैसे 'कमला ते सूरज', जल्लू, मसाहनी, पंजतारे दा फुल्ल ते 'कासम घम्यार' हमेशा डोगरी साहित्य की

सफल कृतियां गिनी जायेंगी, यह बात पूरे विश्वास से कही जा सकती है।

श्री भगवत्प्रसाद साठे के समकालीन कहानीकारों में दूसरा नाम श्री धर्मचन्द प्रशांत का है। श्री प्रशांत पिछले बाईस-तेईस वर्षों से डोगरी भाषा में लिखते चले आ रहे हैं। पर उनकी कहानियों की गिनती साठे जी की कहानियों से कम है।

प्रशांत जी के अभी तक दो कहानी संग्रह 'उच्चियां धारां' और 'गजरे' प्रकाशित हुए हैं।

डोगरी साहित्य को प्रशांत जी की सब से बड़ी देन है, उनकी रोमानी कहानियां। कहानियों का रोमानी वातावरण पैदा करने के लिए श्री प्रशांत बीते युग की कोई घटना लेते हैं। (इन घटनाओं को ऐतिहासिक कहना उपयुक्त न होगा क्योंकि डुग्गर के इतिहास पर अभी तक ऐसी प्रामाणिक पुस्तक नहीं लिखी गई जिसे सामने रख कर ऐतिहासिक घटनाओं को जांचा परखा जा सके।) और फिर उस घटना को रोमानी रंगत देकर इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि कालरेज की प्रसिद्ध थ्यूरी (Suspension in disbelief) की याद ताज़ा हो जाती है। इस प्रकार की कुछ कहानियों में 'खीरली बल', नीलम दी कान' मौहर गढ़ दी कुंजी, और 'नूरजहां' दा मुक्कदमा' गिनाई जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त प्रशांत जी की कहानियां 'चैंचलो' और 'मलैम हत्थ' को डोगरी की मनोरंजक और प्रसिद्ध कहानियों में सम्मिलित किया जा सकता है।

प्रशांत जी की कृतियों को पढ़ते हुए जो बात पाठक को अखरती है वह है उनकी कमजोर किरदार निगारी, कथानक में कृत्रिमता और नैसर्गिकहीन घटनाओं की भरमार। फिर भी कहानीकार की कुछ एक कहानियां अपनी रोचकता के कारण पढ़ने वालों का हमेशा मन बहलाती रहेंगी।

प्रो० रामनाथ शास्त्री का नाम डोगरी कवियों की श्रेणी में गिना जाता है। उन्हों ने दर्जन भर कहानियां भी लिखी हैं जिनमें से त्रिया अखण्ड पाठ, गरजदे बदल, मिल्कदी बिजली, बदनामी दी छां, गलत सौदा, नमें मसाफर पराने रस्ते, होर के करदी ? नाम की कहानियां डोगरी में प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं और कहानी संग्रहों में छप चुकी हैं।

शास्त्री जी की कहानियां डोगरी की पुरानी और नई पीढ़ी के कहानीकारों की रचनाओं के बीच की कड़ी हैं। यदि पुरानी पीढ़ी के लेखकवर्ग में श्री साठे और प्रशांत की कहानियों में 'किस्सा-गोई' की रंगत है, इतिहास और

रोमांच की धूप-छांव है तो शास्त्री जी की कहानियों में एक ऐसी सचाई की झलक मिलती है जो ऊंचे और स्वस्थ आदर्शों के वातावरण में पलती है। ऊपर जिन कहानियों की चर्चा की गई है उन में से अगर हम किसी एक को भी लें तो पायेंगे कि उसमें किसी न किसी सामाजिक समस्या की ओर बड़े यथार्थ रूप से सोच विचार किया गया है और साथ ही साथ उन महान आदर्शों की ओर भी सीधा संकेत किया गया है जिन को अपना कर हमारे समाज का सुधार हो सकता है। यह सभी कहानियां रोचक हैं। अपने पिछड़े हुए समाज को नई दिशाओं पर ले जाने की भावना से ओत प्रोत हैं। अपने लोगों के दुःख-दर्द, निर्धनता और सामाजिक त्रुटियों को देख कर लेखक का मन कितना विचलित हो उठता है इस बात का खुला सबूत है। लेकिन अपने पाठकों तक यथार्थवादी आदर्शवाद (Realistic Idealism) लेजाने के लिये लेखक को अपनी कहानियों के लिये विशेष ढंग का प्लाट तय्यार करना पड़ता है और उस प्लाट के आधार पर कहानी के किरदार अपना अपना रोल निभाते हैं। परिणाम यह होता है कि ऐसे में कहानी के किरदार अपनी इच्छानुसार नहीं अपितु कहानीकार की इच्छानुसार जीवन जीते हैं। वह कहानीकार के वश में रहते हैं बजाए इसके कि कहानीकार उनके वश में रहे। दूसरे शब्दों में शास्त्री जी स्वयं अपने किरदारों के पीछे नहीं चलते, अपने किरदारों को अपने पीछे चलने पर विवश करते हैं। वस्तुतः उनकी कहानियों के किरदार जीते-जागते, मांसल व्यक्ति कम और कठपुतलियां अधिक दिखलाई पड़ते हैं। साथ ही कहानियों में आये लम्बे-लम्बे संवाद, ड्रामाई अंश, किरदारों का भावनापूर्ण दृष्टिकोण, शास्त्री जी की कहानियों को आज की कहानी से दूर ले जाता है।

डोगरी कथासाहित्य की बीच वाली पीढ़ी के कहानीकारों में आठ नाम विशेष रूप से गिनाए जा सकते हैं। यह नाम हैं सर्वश्री राम कुमार अबरोल, वेद राही, मदन मोहन शर्मा, नरेन्द्र खजूरिया, नरसिंहदेव जम्वाल, चंचल शर्मा, ओ० पी० शर्मा और बन्धु शर्मा।

इनमें से चार कहानीकारों के नाम (सर्वश्री राम कुमार अबरोल, वेद राही, नरेन्द्र खजूरिया और मदन मोहन शर्मा) डोगरी के कथा साहित्य में सदा याद रखे जायेंगे। इन चार कहानीकारों की १९५७-५८ ई० के दरमियानी अर्सा में प्रकाशित हुई किताबें इस कारण ऐतिहासिक महत्ता रखती हैं कि इनसे पूर्व डोगरी का कोई भी कहानी संग्रह पाठकों तक नहीं पहुँच पाया था। श्री साठे का 'पहला फुल्ल' जो १९४७ ई० में प्रकाशित हुआ, किताबी रूप में छापाखाना से बाहर न आ सका था और श्रीमती ललिता महता की पुस्तक 'सूई-धागा'

किसी भी तरह से डोगरी कहानी के रंग-रूप को उजागर न कर पाई थी। डोगरी की उन चौबीस कहानियों पर जो "पैरें दे निशान, खीरला मानु, काले हत्थ, और कोले दियां लीकरां नामक संग्रहों में छपी हैं, उनपर आज आलोचना करना, उनमें त्रुटियां और दोष ढूंढना किसी के लिए भी सरल और सुलभ है। परन्तु वेद राही की कहानियां 'छिट', 'भंनू दा घर' और 'मुन्नुआ दा कुत्ता', राम कुमार अबरोल की कहानियां 'ममता दा ऋण' और 'खेतरें दी बण्ड', नरेन्द्र खजूरिया की कहानियां 'दिनवार' और 'की फुल्ल बने अंगारे', मदन मोहन की कहानियां 'ए मर्द बी' और 'स्कोलड़े' वास्तव में उस क्षेत्र को समतल करती हैं जहां बाद में डोगरी कहानी खड़ी हो पाई।

इन चार संग्रहों के उपरांत सर्वश्री राम कुमार अबरोल की पुस्तक 'फुल्ल बने अंगारे', मदन मोहन के संग्रह 'चाननी रात' 'तारें दी लो' और 'दुद्ध लहू ज़हर', नरेन्द्र खजूरिया की पुस्तकें 'रोचक कहानियां (बच्चों के लिए) और 'नीला अम्बर काले बदल', नरसिंह देव जम्वाल की 'धुखदे गोटे', चंचल शर्मा की 'नीयें दे पत्थर', ओ० पी० शर्मा की 'सुक्का बरूद', 'लोक गै लोक', बन्धु शर्मा की पुस्तक 'परछामें' और कुछ ऐसे कहानी संग्रह जिन में भिन्न-भिन्न कथाकारों की कहानियां सम्मिलित हैं जैसे नौ कहानियां, श्रेष्ठ डोगरी कहानियां भाग १, २, चोनमियां डोगरी कहानियां और 'कथाक्यारी' इत्यादि प्रकाशित हुए। इन संग्रहों के अतिरिक्त डोगरी कहानीकारों की कृतियां प्रादेशिक कल्चरल अकादमी की ओर से प्रकाशित होने वाले 'डोगरी-शीराज़ा, डोगरी संस्था, जम्मू की त्रैमासिक पत्रिका 'नमीं चेतना' और फील्ड सर्वे अर्गेनाइज़ेशन द्वारा छापे जाने वाले मासिक' फुलवाड़ी' में आए दिन छपती रहती हैं।

इस प्रकार यदि मध्यस्थ पीढ़ी के कलाकारों की प्रकाशित कहानियों की गिनती की जाये तो पता चलता है कि अभी तक मदन मोहन की पचास, नरेन्द्र खजूरिया की चौबीस (बच्चों के लिए लिखी गई इनकी चौदह कहानियों को छोड़ कर), वेद राही की ग्यारह, राम कुमार अबरोल की बारह, नरसिंह देव जम्वाल की पंद्रह, चंचल शर्मा की दस, ओ० पी० शर्मा की पचीस और बन्धु शर्मा की आठ कहानियां छप चुकी हैं।

मदन मोहन की आरम्भ की कहानियों में (विशेषतः उन में जो 'खीरला मानु' चाननी रात' और मासिक 'योजना' के डोगरी निकुंज में छपी हैं) भावना प्रधान हैं। कई स्थानों पर इन कहानियों में वह स्थिरता, संतुलन, संक्षिप्तता दिखाई नहीं देते जो अच्छी कहानी के लिये आवश्यक है और कुछ एक कहानियों

में (विशेषकर 'खीरला मानु' की कहानियां) आदर्शों का प्रचार इतना अधिक है कि कहानियां बहुत बोझल हो गई हैं। पर अपने संग्रह 'चाननी रात' की कहानियों के सृजन करने तक कहानीकार ने अपनी कला की बहुत सी त्रुटियों का सुधार कर लिया है। और इसी संग्रह की चार कहानियां 'प्हाड़ी कां', जल्ली, 'जवानी चिट्ठियां' और 'चाननी रात' कला और विषय के अधार पर सफल कृतियाँ कही जा सकती हैं। कहानीकार का तीसरा संग्रह 'तारें दी लो' है। इस संग्रह में विश्वस्नीय रूप से लेखक की और डोगरी साहित्य की कुछ उच्च कोटी की कहानियां हैं, जैसे 'नन्द शाह दी बिल्ली' 'सिप्पी बिजन मोती', 'रानी जी' 'छैंदा अम्बर' उल्लरदी बांह्' मुन्स मरावी, कहानीकर का चौथा संग्रह—'दुद्ध, लहू, ज़हर' है। इस संग्रह की कहानियां 'पत्थरी' 'मेरी गली दा पाप', सप्प, कूक, दुद्ध-लहू-ज़हर, शंकरी दा बुड्ढा, और उमराव बेगम' नाम की कहानी जो 'शीराज़ा' के 'गालिब-अंक' में छपी, डोगरी के कहानी जगत में केवल विषय में नूतनता ही नहीं लाई अपितु साथ में सुन्दर शैली और व्यक्त करने की नई दिशाएं भी खोल दी हैं। वास्तव में मदन मोहन की डोगरी कथा-साहित्य को सब से बड़ी देन वह कहानियां हैं जिन में वह सामाजिक और सांस्कृतिक दबाव के कारण मानव की बुद्धि में उत्पन्न होने वाली उलझनों की मनोवैज्ञानिक ढंग से समझने, अस्पष्ट इशारों इत्यादि के किरदारों के भीतरी पक्ष को उजागर करने, उन स्थितियों को उभारने जिन में फंस कर आज के मानव को अपने सिद्धांत और आदर्श टूटते हुए दिखलाई पड़ते हैं और वह अपने आप को लाचार बेबस सा प्रतीत करने लगता है, का यत्न किया है। कहानीकार के इन यत्नों से बिना अत्युक्ति कहा जा सकता है कि डोगरी कहानी ने नये क्षितिज छूए हैं और डोगरी साहित्य की यह शाखा अधिक निडर और ऋणमुक्त बनी है। पर मदन मोहन की कुछ एक कहानियों में अभी भी नाटकीयता का अंश मिलता है। कुछ एक में 'ओ हेनेरी' की 'चौंका देने वाली' शैली को अपनाया गया है। उसकी कला की यह त्रुटियां उनकी कहानियों और आज की श्रेष्ठ कहानियों के बीच दूरी सी बनाए रखती हैं।

स्व० नरेन्द्र खजूरिया अपने गद्य के बांकपन के लिए सदा स्मरण किये जायेंगे। श्री भगवत्प्रसाद साठे और स्व० वत्स विकल की तरह नरेन्द्र खजूरिया को भी डोगरी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वह डोगरी भाषा के मुहावरे को भली भांति समझते थे। बात में से बात पैदा करने की कला, वाक्यों की सुन्दरता एवं चुस्ती, रोचक हास-परिहास और तीखा कटाक्ष, गम्भीर से गम्भीर विचारों और अनुभव को भली भांति पाठकों तक पहुंचाने की उनकी

प्रवीणता, शब्द चित्रों द्वारा कहानी में जान भरने का उनका कमाल—यह सभी विशेषताएं कहानीकार नरेन्द्र की रचनाओं को डोगरी साहित्य में एक विशेष स्थान प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र की कुछ एक कहानियों में डुग्गर के ग्रामीण और पहाड़ी समाज का वर्णन जिस प्रभाव पूर्ण और यथार्थता से किया गया है वैसा शायद ही डोगरी के किसी दूसरे कहानीकार की रचनाओं में मिले। कहानीकार के मन में शताब्दियों से शोषित, दबे, लाचार पड़े डुग्गर निवासियों के लिए दुख था, हमदर्दी थी और अपनी इन भावनाओं और विचारों को लेखक अपने पाठकों तक बड़ी सफलता से ले जाता है। श्री खजूरिया की कहानियां जैसे 'दिन वार', अपना-अपना धर्म, कास्तु दा काला तित्तर' इनामी कहानी, और 'की फुल्ल बने अंगारे', आदि डोगरी साहित्य की श्रेष्ठतम् रचनाओं में गिनी जा सकती हैं।

परन्तु इसके साथ ही श्री खजूरिया की कला के कमज़ोर पक्षों की ओर ध्यान न देना भी उचित न होगा। श्री खजूरिया की कहानियों के बहुत ही कम किरदार ऐसे हैं जिन्हें सच्चे अर्थों में सजीव और यथार्थ कहा जा सके। और तो और उनकी प्रसिद्ध कहानियों 'दिन वार' की नायिका (भागां) और 'कास्तु दा काला तित्तर' की (कास्तु) भी अपना अस्तित्व कठिनता से स्थिर रख पाई हैं। श्री खजूरिया की कहानियों के बहुधा किरदार असंगत वातावरण के दबाव तले इस प्रकार पिसते चले जाते हैं जैसे उन में स्थितियों से जूझने की शक्ति, उत्साह, हिम्मत या फिर जीवन को संवारने की सोच, नाम को भी नहीं। एक अनाड़ी भी डूबने से पहले पानी में दो-चार हाथ ज़रूर मारता है, पर 'भागां' अपना सर्वस्व लुट जाने पर भी उफ तक नहीं करती। जैसे उसके मन के भीतर ही भीतर यह विश्वास बैठ चुका है कि जो कुछ उसके साथ हो रहा है, वह होना ही है, क्योंकि ऐसा होना ही था। कहानीकार जिस सफलता से अपने किरदारों के बाहरी रूप को बनाता संवारता है उस कुशलता से वह उनके भीतरी पक्षों को उभार नहीं पाता है। इसी लिए यह कहना अनुचित न होगा कि नरेन्द्र की किसी कहानी का कोई एक किरदार भी त्रि-आयामिक (Three-dimensional) नहीं बन पाता। कमज़ोर किरदार निगारी के अतिरिक्त नरेन्द्र की कहानियों में उदाहरणार्थ—इक पत्तर पतझड़ दा, कविता दा अंत, धागे ते चट्टान, सद्धरो दाई इत्यादि कथानक की बनावट पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। घटनाएं सत्यता और स्वाभाविकता पर आधारित नहीं। इन दोषों और त्रुटियों के कारण नरेन्द्र की कहानियों में

असंतुलन और रिक्तता है और वह गहनता नहीं आपाई जो किसी टिकाऊ साहित्य के लिए आवश्यक है।

'काले हत्थ' की कहानियों के बाद वेद राही की केवल तीन कहानियां 'आले, आदमी ते मशीन' और 'टैहलन' डोगरी में छपी हैं। इन में से 'आले' कहानी की डोगरी की शाहकार कहानियों में गणना की जा सकती है। १६६५ ई० की हिन्द-पाक युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई यह कहानी केवल कलात्मक-रूप से ही एक नया अनुभव नहीं अपितु कहानीकार ने जंगबाजों के विरुद्ध बिना एक शब्द कहे रक्तपात के कारण होने वाली बरबादी. टूटते हुए मानवीय नातों की दुर्घटना और उनके स्थान पर उगने वाले स्वार्थ और अधमता का यथार्थ चित्रण किया है। राही की दूसरी कहानी 'टैहलन' को भी डोगरी के कथा को साहित्य एक अमूल्य देन कहा जा सकता है।

राम कुमार अबरोल अब डोगरी में नहीं लिखते, पर, उनके दूसरे कहानी संग्रह 'फुल्ल बने अंगारे' की कहानियों की एक विशेषता यह है कि कहानीकार ने डोगरी कहानी को स्थानीय सीमा से बाहर निकाल कर बम्बई और कलकत्ता जैसे महानगरों में घुमाया है। अबरोल के इस यत्न ने डोगरी के कथा साहित्य को नये किरदार ही नहीं दिये अपितु देश के अन्य भागों में जिये जा रहे जीवन की झलकियों से भी संवारा है। लेकिन जो त्रुटियां अबरोल की पुस्तक 'पैरें दे नशान' की कहानियों में विद्यमान हैं वही दोष और त्रुटियां 'फुल्ल बने अंगारे' नामक संग्रह की कहानियों में भी खटकती हैं। कहानीकार की भावनाएं उसकी हर कहानी को बोझल बनाती हैं। किरदार निगारी में न ही परिपक्वता दिखाई देती है और न ही गहनता। कहानियों का नाटकीय ढंग भी पाठक को अखरे बिना नहीं रहता। फिर भी 'फुल्ल बने अंगारे' की कुछ कहानियां जैसे—'उप्परा आला दिक्खारदा हा' और 'रंगीन हत्थ' डोगरी की रोचक कहानियों में गिनी जा सकती हैं।

नरसिंह देव जम्वाल की आज तक प्रकाशित पन्द्रह कहानियों में से 'जमदर' नाम की कहानी डोगरी कथा साहित्य की अमर रचनाओं में से एक है। इसके अतिरिक्त 'परत्यानी' और शांति, अच्छी सफल कहानियां कही जा सकती हैं। जम्वाल की कहानियों की सब से बड़ी विशेषता है उनकी ठेठ, मुहावरेदार भाषा और हमारे आपके निजी जीवन का सुन्दर चित्रण। पर, जिस सूक्ष्म दृष्टि से कहानीकार ने 'जमदर' के हृदय की पीड़ा को जाना और उसकी बेचारगी का वर्णन किया, उसी सूक्ष्म दृष्टि से जम्वाल साहब अपनी किसी

दूसरी कहानी में काम नहीं ले सके। साथ ही उनके वर्णित किरदारों का अस्वभाविक प्रतिकिया, कहाना में आकस्मिक आजाने वाले अस्वाभाविक मोड़, भावनाएं, आदर्शवाद और संशोधनात्मक दृष्टिकोण उनकी कला को कमज़ोर करता है।

चंचल शर्मा के कहानी संग्रह 'नीयें दे पत्थर' में दस कहानियां हैं। इन कहानियों को लेखक ने बड़ी सादगी से और कहानी की अपरिपक्व सामग्री की रोचकता को सामने रखकर लिखा है। वह पाठक जो एक कहानी में जीवन के किसी उलझे हुए पल के चित्र या किरदारों के अनुसार मस्तिष्क में बनी गुत्थियों को समझने या कोई गहरी सोच, कोई ऊंचा विचार या फिर मन के सरस भावों की परछाईं देखने के इच्छुक हों, हो सकता है कि उन्हें 'नीयें दे पत्थर' की कहानियां पढ़कर निराशा हो लेकिन साधारण पाठक जो मनोरंजन के लिए कहानियाँ पढ़ते हैं और जो कहानीकार से देश प्रेम का पाठ या समाज सुधार के विषय में नक परामर्श के इच्छुक हों उन्हें यह कहानियां अवश्य ही रुचेंगी। इस संग्रह की सभी कहानिया रोचक हैं। और पाठक को गम्भीर और गहन सोचों के दबाव को सहन नहीं करना पड़ता। ऐसी कहानियों की हमारी भाषा को अभी काफी आवश्यकता है क्यों कि यह पढ़ने वालों की गिनती में वृद्धि का साधन बन सकती हैं।

ओ० पी० शर्मा को डोगरी में लिखते हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ फिर भी उनके दो कहानी संग्रह 'सुक्का बरूद' और 'लोक गै लोक' प्रकाशित हो चुके हैं। इन संग्रहों में छपी इक्कीस कहानियों में से चार कहानियां 'लाम, सलामती ताई, अन्दरै दा सप्प, और 'सुक्का बरूद' सफल रचनाएं हैं। कहानीकार शर्मा अपनी कहानियों को अस्वाभाविक घटनाओं और बनावटी पन से कथानक को बोझल नहीं करते। उनका अधिकतर ध्यान किरदारनिगारी, वातावरण के चित्रण और संवादों के बनाने संवारने की ओर लगा रहता है। पर कहीं कहीं उनके गद्य में बनावटीपन पैदा हो जाता है और कहानियों में संक्षिप्तता की न्यूनता दिखाई पड़ती है। कहानियों का अंत प्राय: किसी न किसी किरदार की मौत पर होता है। साथ ही कहानीकार जानबूझ कर प्रयतन करता दिखाई देता है कि पढ़ने वाले को कहानी के अंत पर 'शाक' दिया जाये। इन त्रुटियों और दोषों के होते हुए भी 'सुक्का बरूद' और 'लोक गै लोक' ने डोगरी के कथा साहित्य में सराहनीय वृद्धि की है।

ओ० पी० शर्मा की तरह श्री बन्धु शर्मा को भी डोगरी साहित्य में

लिखते थोड़ा ही समय हुआ है। उनकी आठ कहानियों का संग्रह 'परछामें' छप चुका है जिस के अंतर्गत उनकी कहानियां 'रंगली चिड़ी, परछामें, पुल ते लीकर' मन को छू लेने वाली रचनाएं हैं। बन्धु शर्मा अपने किरदारों की रूह में झांकना जानते हैं और वह भावनाओं के वेग में नहीं बहते। उनकी कहानियां संतुलन और संक्षिप्तता के गुणों से ओत प्रोत हैं। उन से डोगरी कहानी की बहुत सी आशाएं जुड़ी हैं।

नई पौद के कहानी कारों में ओम गोस्वामी का नाम अग्रगण्य है। उन का कहानी संग्रह 'नैंह् ते पोटे' छप चुका है। इस संग्रह में ग्यारह कहानियां हैं जिन में से 'राज परत', प्रालब्ध और करसानै दा धन' नाम की कहानियों में वह सभी गुण विद्यमान हैं जो एक अच्छी कहानी में होने चाहिये। शेष कहानियां दरमियानी हैं। और उन्हें पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे कोई कलापूर्ण कृति नहीं, अपितु समाज शास्त्र का कोई रूखा सूखा पाठ पढ़ रहे हों।

स्व० श्री वत्स विकल डोगरी साहित्य को केवल पांच कहानियां और एक उपन्यास ही दे पाये। उनका नाम, उनकी कहानियों के लिये तो नहीं, बल्कि उनके उपन्यास 'फुल्ल बिना डाली' के लिये डोगरी साहित्य में सर्वदा लिया जायेगा।

ओम गोस्वामी के अतिरिक्त नई पौद के दो एक नाम और हैं जिन से डोगरी भाषा को काफी आशाएं हैं। इस श्रेणी में श्री छत्र पाल का नाम लिया जा सकता है।

डोगरी कहानी की चर्चा करते हुए कुछ और नाम भी याद आते हैं जिन्हों ने या तो अभी तक एक-एक, दो-दो कहानियां ही लिखी हैं और या फिर एक आध कहानी लिखकर जिन्हों ने लिखना छोड़ ही दिया है। यह नाम हैं—नीलाम्बर देव शर्मा, मदन ठाकुर, ठाकुर पुन्छी, विश्वानाथ खजूरिया, यश शर्मा, अश्विनी मगोत्रा, विजय सूरी और कुलदीप सिंह जंद्राहिया।

डोगरी कहानी का यह संक्षिप्त परीक्षण प्रस्तुत करते हुए मैं इस बात को स्वीकारने में रत्ती भर झिझक अनुभव नहीं कर रहा हूँ कि अभी तक हमारी जुबान में ऐसा कोई भी कथाकार पैदा नहीं हुआ जिस की गिनती संसार के या भारत के ही श्रेष्ठ कहानीकारों में की जा सके। परन्तु एक ऐसी श्री जुबान से जिसके साहित्य की कुल उमर कठिनता से सताईस, अठाईस वर्ष हो इस बात की आशा करना अनुकूल भी तो नहीं। इतनी अल्पावस्था में हमारे कहानीकारों

ने उस ज़ुबान में जिसे कुछ ही समय पहले ज़ुबान तक ही न माना जाता था, ऐसे रोचक, सुन्दर और सजीव गद्य को जन्म दिया, कुछ ऐसी कहानियों की रचना की कि जिन्हें संसार के अमर साहित्य में स्थान मिल सकता है और साथ ही साथ यह भी सिद्ध करके दिखलाया कि हर बड़ी ज़ुबान की भांति डोगरी भाषा में भी इतना सामर्थ्य और बल है कि मानवीय जीवन की हर घटना, हर भावना, हर विचार इस में व्यक्त किया जा सकता है।

डोगरी के कहानीकार उन कठिन कोसों को नहीं भूले जिन्हें वे तय कर आए हैं और वह पड़ाव भी उनके मस्तिष्क में दीपित है जहां अपने अनथक परिश्रम और प्रयास से वे अपनी भाषा के साहित्य को ले जाना चाहते हैं।

डोगरी कहानी की क्या आवश्यकताएं हैं, इस में कौन कौन सी त्रुटियाँ हैं और कहां हैं, हमारा कहानीकार भली भांति जानता है और सैंकड़ों कठिनाइयों के होते हुए वह पूरी लगन से साहित्य के सृजन में जुटा हुआ है। डोगरी भाषा में अभी कोई चैखोव, मोपासां, ओ हेनरी, टैगोर, प्रेम चन्द, अज्ञेय, रेणु, निर्मल वर्मा, कृष्ण चन्दर, बेदी, मिण्टो पैदा नहीं हुआ। परन्तु डोगरी गद्य को अब वह बल और सौंदर्य प्राप्त है जो किसी महान कहानीकार की ऊंची, गम्भीर सोचों और कोमल व मधुर भावनाओं के भार को सरलता से सहन कर पाये।

खिसकी हुई धूप

— शचीन्द्र उपाध्याय

उस सुबह चंपई चुनरी देने के बाद परसा को लगा था, सतवंती अब कुछ नहीं कहेगी। मोती का नाम भी नहीं लेगी। चुनरी वह लाया भी इसी विश्वास के साथ था और जब उसे दी थी तो वह ठीक छोटी बच्ची की तरह चिहुँक उठी थी। चुनरी हाथ में लेकर उसे इस तरह देखने लगी थी जैसे उसके हाथ में कोई अनमोल वस्तु सौंपदी गई हो।

उसने एक क्षण गंवाए बिना चुनरी पहन ली थी और घर में नाचने लगी थी। उसकी आंखों में प्यार का अपरिसीम ज्वार उमड़ आया था और सेब से गाल रक्तिम हो उठे थे।

थोड़ी देर बाद परसा ने अपनी जेब से एक छोटी-सी रंगीन डिबिया निकालकर इस आशय से हाथ में ली थी कि सतवंती उसे देखले और जब उसे विश्वास हो गया कि सतवंती ने सचमुच उसे देख लिया है तो बाद में मुट्ठी उसकी ओर बढ़ादी।

उसे उम्मीद थी कि सतवंती डिबिया लेने के लिए अपने हाथ उसकी ओर बढ़ाएगी और तभी वह अपना हाथ वापस खींच लेगा। खींचने - खिचाने का यह क्रम काफी देर तक चलता रहेगा और मोती की मौजूदगी का साया जो अब तक उसके घर में टिका हुआ है, दूर हो जाएगा।

लेकिन उसी समय घर के ऊपर बैठा हुआ मोर ज़ोरों मे बोल उठा था और डिबिया वाली बात को भूल कर सतवंती बच्चों की तरह भागकर दरवाजे की चौखट में आ खड़ी हुई थी।

परसा उसके इस पागलपन को नहीं समझ सका। हालांकि सतवंती की आदत से वह परिचित था, उसने एक पल के लिए उसकी घबराहट और जल्दबाजी को महसूस किया और मुट्ठी में बंद डिबिया को वहीं छोड़ उसके पीछे-पीछे चला आया।

उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था। मोती हालांकि सहराने में नहीं था। अपने किसी रिश्तेदार के यहां चला गया था, फिर भी उसकी अदृश्य छाया परसा को सहराने में मंडराती हुई लग रही थी।

बाहर गलियारे में बस्ती के बच्चे खेल रहे थे। धूल में लथपथ हुए वे चिल्ला रहे थे और सतवंती उनको खोई खोई आंखों से देख रही थी। बस्ती के अलाव जल चुके थे। हालांकि अलावों पर अभी लोग नज़र नहीं आ रहे थे। जंगल में जाती बकरियों की सम्मिलित में...में...से सारी बस्ती मुखर हो उठी थी। उनके खुरों से उड़ती धूल देहों से आती गंध में मिलकर इधर उधर छा गई थी।

परसा बेहद उदास हुआ यह सब देख रहा था। मोती के आगे पता नहीं. वह अपने आपको क्यों बौना महसूस करता है। जब उसे ध्यान आया कि मोती तो सुबह ही गांव के सहराने में चला गया तो उसे एक सुकून मिला और वह सामने खड़े नीम की ओर देखने लगा।

उगते हुए सूर्य की किरणें नीम की फुनगियों पर अटकी थीं। अचानक ही उसे समय का घ्यान हो आया और सतवंती से बोला—"चल, भीतर आ जा। मुझे रोटी खाकर एक काम से जाना है।"

सतवंती अभी तक दरवाजे में ही खड़ी थी। उसकी बदहवास आंखें चारों ओर कुछ खोज रही थीं। बीच बीच में वह अपनी नई पहनी चुनरी को भी देख लेती थी। उसने परसा की बात शायद नहीं सुनी, इसीलिए परसा ने उसकी चुनरी का पल्ला हल्के-से पकड़कर खींच लिया। पल्ला खींचने के इस प्रयत्न से सतवंती के सिर का आंचल खिसक गया और वह लजा गई।

'यह क्या कर रहे हो ?' उसने पल्ला छुड़ाते हुए कहा। 'देखते नहीं, सब लोग आ-जा रहे हैं।'

"तो क्या हुआ। हमारी तरफ कौन आंख लगाए बैठा है।" परसा ने खुशामद करते हुए कहा और घर की दीवार से टिक कर बैठ गया।

सतवंती भी एक झटके से मुड़ी और चूल्हे के पास आकर बैठ गई। चूल्हे की लकड़ियां कभी की बुझ चुकी थीं। एक-दो बार फूंक मार कर उसने लकड़ियों को जलाया और रोटी बनाने लगी।

रोटी बनाते समय उसकी गदराई गर्दन का नंगा हिस्सा साफ नजर आ रहा था। परसा को सतवंती बेहद आकर्षक लगी। घर में मौन छा रहा था। अचानक ही उस मौन को भंग करता हुआ वह बोला—"तुम्हारी देह पर चंपई रंग अच्छा लगता है।"

"हिश्श......।" सतवंती लजा गई और उसकी ओर एक कटाक्ष फेंक पुन: रोटी बनाने लग गई।

जब से मोती आया है, दोनों के बीच मौन चल रहा था। यह मौन शायद अब दूर हो जाएगा—परसा को विश्वास हो गया था।

वह चुपचाप रोटी खाता रहा और बीच बीच में सतवंती के चेहरे की ओर देखता रहा! उम्र की लम्बाइयां पार करती सतवंती......। उसके चेहरे पर हल्की हल्की लकीरें बनने लगी हैं। एक अज्ञात कमज़ोरी वह भी महसूस करने लगा है। सात वर्ष के विवाहित जीवन में वह सतवंती को कुछ भी नहीं दे पाया। जब से उसकी नौकरी अस्पताल में लगी है, सतवंती और खाली हो गई है। इससे पहले दोनों चौबीसों घंटे साथ साथ रहते थे। दोनों साथ साथ जंगल जाते थे, साथ ही लकड़ियां लेकर लौटते थे और जब उन्हें बेचकर घर आते तो बेहद थक जाते थे। रात में खा-पीकर जो सोते तो एक ही नींद में सवेरा हो जाता था।

अस्पताल की चौकीदारी मिलने से उसे आराम जरूर हो गया, लेकिन सतवंती को घर में बच्चे का अभाव बेहद अखरने लगा। इस अभाव से हालांकि परसा परिचित था, लेकिन सतवंती के आगे वह कुछ भी करने में अपने आपको असमर्थ पाता था। दोनों साथ रहते थे, लेकिन एक दूसरे से दूर.........खोये खोये, बेहद उदासीन.....।

रोटी खाकर जब वह उठा तो सतवंती अपनी पोटली सामने रखकर बैठ गई और बोली—"मोती गगोर चलने की बात कह रहा था। मायजी ढोकने दुनियां जा रही है। एक रात के लिए मैं भी हो आऊं।"

परसा का मुंह उसकी बात सुनकर एकदम उतर गया। वह नहीं समझ

सका कि गगोर जाने की बात वह किस तरह गले उतारे। रात में थोड़ा पानी गिरा था। पानी के साथ हल्के हल्के ओले भी पड़े थे। इसीलिए इसका बहाना लेता हुआ वह बोला—"इस महावट में भी कोई घर छोड़ता है। देखती नहीं, सरदी कैसी पड़ रही है। गगोर क्या ऐसे ही जाना हो जाएगा।'

गगोर जाने की बात वह जरा भी स्वीकार नहीं कर सका। वैसे भी मोती के नाम से उसकी नस नस ठंडी हो जाती है। अपनी दुर्बलता सौ गुनी होकर दिखाई पड़ने लगती है। वह कतई नहीं चाहता कि सतवंती मोती को देखे। उसका नाम भी ले।

बचपन में सतवंती की सगाई मोती से हुई थी, लेकिन बाद में वह छूट गई और सतवंती का विवाह उससे हो गया। अब लगता है—मोती को सतवंती नहीं भुला सकी। सात-आठ वर्ष से मोती गगोर में रह रहा है। वहीं उसकी शादी हो गई और उसके फूल से बच्चों को परसा ने भी देखा है। गगोर की देवी के लिए प्रसिद्ध है कि वह खाली झोली भर देती है। लेकिन मोती के साथ सतवंती के जाने की बात वह कैसे स्वीकार करले।

'महावट क्या करेगी। इन्हीं दिनों तो वहां जाया जाता है।' सतवंती थोड़ी तल्खी के साथ बोली। उसके स्वर में झुंझलाहट थी।

परसा बिना कुछ बोले धीरे से ही उठा और बाजार की ओर चला गया। तीसरे पहर जब वह वापस आया तो सतवंती घर में नहीं थी। हालांकि घर का दरवाजा खुला हुआ था। बस्ती में इस समय कोई भी नजर नहीं आ रहा था।

वह थका-सा अपने घर के सामने बने चबूतरे पर बैठ गया और आसपास कुछ खोजता हुआ बीड़ी पीने लगा। सारी बस्ती गहरे सन्नाटे में डूबी थी। इस बेला बस्ती में वैसे भी कोई नहीं रहता। औरतें लकड़ियां लेने जंगल में चली जाती हैं और मर्द मजदूरी करने चले जाते हैं। बस्ती के बच्चे आस-पास के गड्ढों में या तो मछलियां मारते रहते हैं या कूड़े के ढेरों पर कुछ बीनते रहते हैं।

अचानक ही परसा की देह का रोम रोम किसी तीखी ठंडक से ऐंठ गया और वह पसीना पसीना हो आया।

वगल के घर से पहले मोती बाहर आया और उसके बाद सतवंती। वे

दोनों घबराये से लग रहे थे। मोती के हाथ में हमेशा रहने वाली बड़ी-सी लकड़ी थी। वह बिना इधर उधर देखे गांव जाने वाली पगडंडी पर चल दिया।

परसा ने न जाने कितने कड़वे घूंट पीते हुए उधर से अपनी पीठ करली और इस ओर आती सतवंती को अनदेखा करते हुए ऐसा बहाना करने लगा, जैसे वह अभी अभी यहां आकर बैठा है।

"तुम कब आगए ?" सतवंती ने चौंकते हुए प्रश्न किया। उसका मुंह कालास्याह पड़ गया था। चेहरे पर बदहवासी के चिन्ह थे और सुबह पहनी हुई चुनरी अस्तव्यस्त हो रही थी। वह बिना परसा से आंख मिलाए घर में घुस गई।

परसा कुछ भी नहीं बोल सका। वह धीरे से ही उठा और अस्पताल की ओर चला गया। दूसरे दिन जब वह आया तो सतवंती से बोला—"चलो, गगोर हो आएं।"

"नहीं, अब चलकर क्या करेंगे।" सतवंती इतना ही बोली और अपने काम में लग गई।

पांचवीं और अन्तिम मौत

—राज भल्ला

आज वह सचमुच ही मर गया। वैसे एक अरसे से उसे मरता देख रहा हूं। अपना पुराना वाकिफ आदमी है। कब से अस्पताल पड़ा था, पर श्मशान जाने की आज ही सूझी।

लगता है कोई खास तारीख मुकर्रर कर रखी थी, डायरी खो जाने से हर बार गुस्ताखी करके उस काली नकावपोश परी से बच निकलता। डायरी उसकी तो खो चुकी थी, पर परी के रोजनामचे बड़े सम्भल कर टिके रहते, क्या मज़ाल कोई गलती हो।

हां तो उसने आज मरना मंजूर कर लिया है। कब का मर जाता पर केस को लम्बा, छोटा करने के पारखी वकीलों की तरह, ये डाक्टर लोग उसे मरने भी तो नहीं देते। किसी वक्त जाने, पहचाने लोगों में काफी कारगर आदमी समझा जाता। अब यदि यही लोग उसे बचाने के लिए डा० से दो एक शब्द कह ही दें तो भला क्या हर्ज़ है??

सच ही आज की साइंस किसी को सीधे मरने भी तो नहीं देती! बेशक किसी का जीना मरने से भी बदत्तर क्यों न हो? औषधि विज्ञान तो रोग लगी जिन्दगी को अच्छी भली जिन्दगी से ज्यादा अरसा बचाते देखा है। कम से कम अकालमृत्यु की सम्भावनाएं दिन प्रतिदिन कम होती जा रही हैं। तो भी आज वह मर ही गया!! चण्डीगढ़ अस्पताल का मरीज़ सच ही आज मर गया है। वैसे उसे मैंने सब से पहले अपने ही व्याह में मरते देखा था। एक मोटी रकम शादी के लिए कर्ज ली गई। दिन रात घुलता रहा, मरता रहा।

कदाचित् अपशकुन समझ कर वह श्मशान पहुंचने की धृष्टता नहीं कर सका। कर्ज के भार ने तमाम मन्सूबे जो बांधे थे कैंसल कर दिए। खैर...रूखा, सूखा खाकर कर्ज खत्म हुआ और वह सोचने लगा—बच निकला हूँ, अब उम्मीद से जिऊंगा।

वैसे वह नाहक पहली बार मरता रहा। किसी समझदार से सलाह लेता, तो कोई भी उसे मरने को मजबूर होने न देता। भला कर्ज़ा लेकर भी आज कोई मरता है? आज तो मरता है कर्जा देने वाला! किसी को दिया कर्ज़ मांग कर तो देखो।

यह पहली मौत मरने वाला ला० भगवानदीन ही तो है। अब शायद वह जल्दी नहीं मरेगा। पर इधर मोतिया जवान हो गई। सुयोग्य वर के नाम पर उसे ठाका, रोका, सगाई और शगुन की क्रमबद्ध योजना से दो, चार होना पड़ रहा है, तब कहीं ....।

तो क्या वह एक बार और नहीं मर सकता?

बाप की मौत, भला मोतिया पसन्द करेगी? पर जब किसी लड़के, लड़की को घर की रजामन्दी से शादी करनी है तो फिर पुराने बाप को मारना ही पड़ेगा।

सोटियों से नहीं, पत्थरों से नहीं, ज़हर से भी नहीं, सिर्फ पच्चीस से पचास हज़ार की एक छोटी सी रकम का अचानक जिक्र करके।

मोतिया ग्रेजुएट है पर सिर्फ कागज के टुकड़े पर। विवाह के मैदान में उसकी कीमत ज़ीरो भी नहीं। बेशक वह अपने आगे पीछे के लोगों में ग्रेजुएट होने की ढींग मारती फिरती है। ग्रेजुएट मोतिया के पिता को मैंने तो यही कहते सुना है—'बेटी भली न एक'। पसीस हज़ार की रकम कहां से आए? शायद बेटी को ठिकाने लगाने के लिए वह एक बार फिर मरेगा—कर्ज़े के लिए झक मारेगा।

तो फिर कौन कहता है कि जमाना बदल गया है? इतना धोखा कैसे हो रहा है कि मरता हुआ जीने के स्वप्न ले? अब ला० दीनदयाल फिर कुछ दवाइयों के सिर पर मरने लायक बन चुका है—शायद कुछ जुगाड़ हो ही जाए।

यह उसकी दूसरी मौत थी। सच ही आज लोग बड़ा सोच समझ कर मरते हैं। इस बार बच निकला तो शायद फिर कभी नहीं। पर अभी

मोतिया की शादी किए तीन ही तो बरस बीते हैं। हीरा की शादी के भी कई प्रस्ताव ग्राचुके हैं।

बार बार मर कर ला० दीनदयाल को सच ही मरने की ग्रादत हो चुकी है। ग्रौर ग्रब यह तीसरी मौत है जब कि हीरा की रजामन्दी के खिलाफ वह सुशीला को ग्रपनी बहु बनाने को रजामन्द हो गया। काली कलूटी ग्रनपढ़ सुशीला।

पर इस तीसरी मौत का प्रभाव ला० दीनदयाल पर कम ही पड़ा। वेशक मांगन में ग्रात्मा तक को बेचना पड़ता है, तो भी! शायद इसी लिए दीनदयाल केसरी रंग की पगड़ी बान्धे घूम रहा है—कुछ मोटी रकम की चर्चा भी। मेरे से कुछ हिच करता है तो भी हीरे की शादी के बाद मिला तो कहने लगा—शाह जी! पुत्रों ग्रौर घोड़ों वालों के दिन फिर ही जाते हैं। लाटरी के ड्रा में धांधली हो सकती है पर दूसरों के सिर पर दिन फिरा लेने बारे में नहीं।

फिर सुन्दर, गोरे ग्रौर पढ़े लिखे हीरे को बिलकुल विपरीत सुशीला मिल गई। नोंकझोंक चल रही है शायद तलाक तक नौबत ग्रा जाए।

फिर इस भारी रकम का क्या होगा—जो काली ग्रौर ग्रनपढ़ लड़की को गोरा महसूस करवाने के लिए दहेज़ के रूप में दी गई थी। मामला कितनी खटाई में पड़ गया है। इस मामले में फंसकर वह शायद तीसरी बार मरेगा, कदाचित् कुछ सोचा तो होता।

परेशान सा ला० दीनदयाल मुहल्ले के डाक्टर के पास पहुँचा। डा० जी! मर रहा हूं, है कोई दवा? डा० बलराज बोले -क्या है जनाब? कैसे ग्राए? मर रहा हूं डाक्टर जी।

खैर नब्ज़ देखी, ब्लड-प्रेशर चैक हुग्रा, दिल की धड़कन का ग्रन्दाज लगाया ग्रौर फिर बला टालने के ख्याल से बोले—थोड़ी घबराहट है, पी लीजिए एक खुराक टानिक।

सच ही तीसरा ग्रटैक किसी भी चीज़ का बड़ा जबरदस्त होता है। फिर यह तो मौत का ग्रटैक है। मैंने भी इस वक्त कुछ हमदर्दी ज़ाहिर करनी चाही पर बार बार मरने वालों से मुझे कम ही लगती है, इसलिए मैंने छूटते ही पूछा, ला० जी क्या हाल है? दिन फिरे या नहीं?

"कौन इतना सच कहता कि दूसरों के दिन फिरा कर ग्रपने दिन नहीं फिरा करते ला० जी।"

रोज़ मरने वाले को कोई कितनी बार बचा लेगा ? आखिर डाक्टर कोई फरिशता तो नहीं ।

ला० दीनदयाल चुप था, किसे कहे कि कौन सी मज़बूरियों ने इस छोटी उम्र में भी उसे तीन बार मरने को मजबूर किया है ।

अपनी ओर भी ध्यान दिया करें—चाय के साथ दो पीस डबलरोटी के लाती हुई जानकी देवी बोली । आगे हम कौन मुंह दिखाने लायक रह गए हैं । हीरा तो बीवी छोड़ने पर तुला हुआ है । क्या सोच कर यह शादी तय की थी ? फिर कहते हैं मैं समझदार हूँ ।

मत कहो जली, कटी जानकी देवी ! मैं तो आगे ही मरा हुआ हूँ ।

मर रहा हूं, मर रहा हूं सुन २ कर सच तंग आ गई हूं । हीरा तो निकला ही नालायक, पर अरुण की खुशहाली देखने के लिए भी तो कुछ बचे रहो ।

कितनी विचित्र विडम्बना है—जिनके लिए वह बार बार मर रहा है, उन्हें उसके मरने का अहसास ही नहीं ।

तीन साल से अरुण भी तो एम० एस० सी० करके घर बैठा है । कार्टून-नुमा नौजवान और कुछ कर भी तो नहीं सकता, सिवा किताबों के उलट, पुलट करने के । फिर श्रम का मूल्य आंका ही कब जाता है इस देश में । उसकी डिग्री बिना अढ़ाई हजार के बेकार पड़ी है ।

तो क्या नम्बर ठीक नहीं ? नहीं तो ।

तो क्या बड़ी सिफारिश चाहिए ? हां कुछ २ ।

तो क्या फिर रिश्वत चाहिए ? हां सब कुछ ।

करवट पर करवट ! नया नौजवान क्या समझे कि परेशानी की रात कितनी मायूस और लम्बी रात होती है ।

दिन निकला, ला० दीनदयाल मन्दिर में अमरता का वरदान मांगने जा रहे हैं । वे अब बार २ मरने की बुज़दिली या मजबूरी से बचने के लिए भगवान से प्रार्थना करेंगे । पर अरुण के लिए उन्हें एक बार फिर मरना पड़ेगा यह सोच कर धक् से रह गए ।

अगर आज ही नौकरी चाहते हैं तो रुपया तैयार रखिए पिता जी !

रुपया कमा लेंगे पर चान्स मिस नहीं होना चाहिए। अरुण का संकेत सम्भवत: पब्लिक सर्विस कमीशन में घुसे किसी एक रिश्वतखोर की ओर है। शहर में काफी चर्चा है, पर कोई क्या करे ?

"मैं रिश्वत देना उतना ही बुरा समझता हूँ जितना रिश्वत लेना'। मुझे मजबूर मत करो अरुण ! तुनुक मिजाज अरुण बौखला उठा। भला आगे कभी रिश्वत ली या नहीं दी ?

मोतिया दीदी को ठिकाने लगाने के लिए आपने कौन से पापड़ नहीं बेले ? और फिर जीजा जी का नकोड़ा वैसा ही ऊपर चढ़ा हुआ है। पच्चीस हज़ार की रकम कम नहीं होती। बरसों पेट पीठ के साथ लगाओ, तब कहीं इतनी रकम तैयार होती है।

भैय्या के लाख मना करने पर भी आपने उस लड़की को पसन्द किया जो अपनी काली चमड़ी को गोरा महसूसने के लिए एक बड़ी रकम ला सकती थी। ये दोनों रिश्वतें दीं और लीं गईं विवाह-संस्कार का धार्मिक जामा पहन कर। फिर न जाने आपको इस अढ़ाई हजार की छोटी रकम में कहां से रिश्वत की गन्ध आ रही है ?

दीनदयाल अपने ही लड़के की इस मन:स्थिति से एक बार फिर मौत को गले लगाने को शायद तैयार हो गए।

कितने चुपके से एक जाल सा बुन जाता है इस रिश्वतखोरी का भी। इस जाल की कोई रस्सी धर्म के कारखाने में तैयार होती है तो कोई राजनीति के; रीति-रिवाजों का बना जाल—न जाने कितनी बार कोई फंस कर मरेगा ?

अरुण के शब्दों से लाला दीनदयाल सच ही मर रहा है।

पर नहीं, मैं अब और अधिक नहीं मर सकता। खून, पसीने की कमाई उसे दे दूं जो पब्लिक की सेवा का दम्भ भरता है ?

रात बीत गई एक और। टहलते २ और फिर अबौट्टर्न करते। हे राम ! जिन्दगी का अबौट्टर्न कब होगा ? कितनी बार मरूं भला ? पर बिना मरे, जाऊं भी कहां ? सभी तो मुझे दिन रात मौत की ओर धकेल रहे हैं। मुझे तो अब यही सच्चा लगने लगा है कि सचमुच ही मौत का शिकञ्जा कुछ ढीला पड़ गया है। कोई नहीं मरता इस दुनिया में—या फिर मरता है तो मेरी तरह चलता, फिरता सौ बार मरता है।

अब मुझे पब्लिक-सर्विस कमीशन के दफ्तर में मरना है। क्या बढ़िया नाम है—'लोक-सेवा-आयोग'। अढ़ाई हजार दूंगा जनता के सेवादार को। क्या गवर्नमेंट कुछ नहीं देती ?

ला० दीनदयाल नहीं जानते कि जिस देश में बड़े २ मन्त्रियों तक के मेज़ के नीचे की चोरी को मुआफ किया जाता हो वहां क्यों न यह सिलसिला चले ? कोई मजबूरी से मरता है तो कोई मजबूरी पैदा कर देता है। कितना नारकीय बनता जा रहा है सब कुछ।

अच्छा भला आदमी अपने ही बनाए जाल में फंस गया। फिर कोई कहे कि मैं जी रहा हूँ तो कितना हास्यास्पद होगा, शायद उतना ही जितना कोई सांस लेते हुए भी मर रहा हूँ की रट ला० दीनदयाल की तरह लगाए फिरे।

खैर, अरुण को नौकरी मिल गई। पढ़ना शायद उतना मुश्किल नहीं रहा जितना नौकरी ढूंढना।

मर २ कर जीने वाला लाला सोच रहा है, क्यों अरुण पर इतना खर्च किया ? व्यर्थ में टयूटर का खर्च ! व्यर्थ में इतनी मेहनत !! यदि रुपया कुछ बचाया होता तो शायद यह तीसरी अढ़ाई हजार वाली मौत मुझे इतनी अधिक न खलती।

बार २ की इन मौतों से मरा हुआ दीनदयाल घर पहुंचा ही था कि दस्तक हुई।

कौन ? लीजिए बाबू जी तार। तार पढ़ी, लिखा था बड़ी मां जी की मृत्यु हो गई है। मृत्यु पढ़ते ही ला० के चेहरे पर एक अजीब भाव छा गया। कितनी बढ़िया मौत है मेरी मां जी की। मेरी माँ एक ही बार तो मरी। शायद सन्तालीस के पहले के लोग एक ही बार मरते हैं।

यह चौथी मौत परदेस की मौत थी। दीनदयाल के जाने से मौत में कुछ रंग आ गया। अर्थी कुछ रौनक दार बन गई, नहीं तो बड़े शहरों में चार उठाने वाले और एक शव बस यही पांचों पाण्डव होते हैं इस शव यात्रा में। ठीक भी है, सभी तो अपनीअपनी जगह मर चुके होते हैं, फिर कौन इकट्ठा हो।

खैर, रस्मो-रिवाज के मुताबिक क्रिया-कर्म हो गया, मां के मरने पर ही इतना खर्च कर दिया जितना शायद जीने पर करने में लोग प्रायः कतराते हैं। पर जग हंसाई अच्छी नहीं होती। फिर मां ने कब रोज २ मरना है ?

दीनदयाल में अब इतनी ताकत नहीं रही कि और मौतों का सामना कर सके। वैसे ज्यों २ वह थोड़ा २ मरता जाता था त्यों २ सिरदर्द, सीनादर्द, कमरदर्द और दिलदर्द न जाने कितने दर्द उसे घेरे बैठे थे।

आज बड़ा आश्चर्य सा हुआ जब थोड़ा २ नहीं, पूरा मरने से पहले उसे सब रोग छोड़ गए। बरसों अस्पताल पड़ा रहा पर नहीं मर सका और अब चंगा भला लेटा ही था कि फिर न उठ सका।

जानकी हि[illegible] रही है पर उसे क्या पता कि वह सच ही आज मर गया है। मर नहीं गया सच्च जी उठा है। अब कोई छोटी, मोटी मौत गर्दन पर सवार न होगी, कोई न कहेगा कि जिन्दगी का अबौट्टर्न कब ? काश ! यह, यह बड़ी और पूरी मौत कुछ पहले आ जाती, बेचारा इतनी मौतें तो न मरता। पर मौत पर किस का बस चला ? वह मरने वाले को जीने के लिए तैयार करती है तो जीने वाले को मरने के लिए मजबूर।

दूरी

—उर्मि कृष्ण

गाड़ी से उतर कर वह दुविधा में पड़ गया कि स्कूटर करे या बस पकड़े। अटैची और फलों की टोकरी को दो एक फर्लांग तक उठाना कठिन नहीं होगा, और क्या पता कोठी बस स्टाप के बिल्कुल साथ ही हो। लेकिन वह कुली की तरह दोनों हाथ में सामान लटकाये पहुंचे तो भैया—भाभी मन में क्या कहेंगे ? यह सोचकर उसने स्कूटर कर लिया, तीन चार रुपये की तो बात थी।

स्कूटर में उसने पीठ गद्दी से सटाकर सिर पीछे को झुका लिया और शरीर ढीला छोढ़ दिया। तीसरे दर्जे के डिब्बे में लंबे सफर की थकान भूलती जा रही थी और वह बहुत हल्का महसूस कर रहा था। स्कूटर के हिचकोले उसे अच्छे मालूम पड़ रहे थे और वह खुस था कि आखिर पहुँच गया है।

कितने बरसों बाद आना हुआ था। भैय्या, गाहे-बगाहे लिखते रहे थे और वह भी एक के बाद एक कार्य-क्रम बनाता रहा था। पर डेढ़ हजार मील दूर से आना जाना क्या सरल हे कि जब जी चाहा चले गये। दो-ढाई सौ रुपये निकालने की गुंजायश हो तो जाओ। यानी एक महीने की तनख्वाह साफ। और वह भी अकेले आओ तब। आशा को भी लाता तो पूरे पांच सौ रुपये चाहिये थे। वैसे वह अनुरोध करता रहा था कि आशा भी चले, पर आशा राजी हो जाती तो पैसे जुटाना कठिन हो जाता और फिर कार्य-क्रम भविष्य के लिये उठा रखना पड़ता। आशा समझदार लड़की है, पर वह खुद क्यों ऐसी नकली स्थितियां पैदा करता और जीता है।.........उसने एक खिसियानी हंसी हंसने की कोशिश की।

जब जब आने की बात उठती वह भाभी, भैया, अम्मां, रीता, नीता, बबलू सबके लिये ढेर सारी चीजें ले जाने का उछाह संजोता। भाभी के लिये साड़ी और चोली का पीस, अमां के लिये साड़ी, रीता नीता बबलू के लिये खिलौने, मिठाई और हो सके तो सूट भी, भैया के लिये क्या लिया जा सकता है. यह वह सोच नहीं पाता था। भैया की ऐसी चिंता भी नहीं थी। पर वह सब नहीं हो सका। भाभी के लिये भारी साड़ी खरीदना संभव नहीं हुआ और हल्की ले जाना बेकार था। अतः वह उनके लिये सिर्फ चोली का पीस, अमां के लिये एक सादी धोती और बच्चों के लिये छोटी सी टोकरी मिठाई की, इतना ही जुटा पाया। फिर भी पचास रु० एडवांस लेने पड़े। आशा ने पैसे निकाल दिये थे। एक बार भी आना-कानी नहीं की। पर वह देख रहा था कि उसे खल रहा है। उसे खुद भी कचोट हो रही थी। सौ दो सौ अड़मिड़ के लिये पड़े रहें तो अच्छा रहता है, नहीं तो अचानक कोई खर्चा निकल आने पर हाथ फैलाते फिरो। और अब तो आशा की डिलिवरी सिर पर है।

देखा जाये तो इसी बहाने आना संभव हो सका। उसने आशा की और अपने आपको, समझा लिया था कि डिलीवरी के लिये अमां को लेता आएगा। नहीं तो बरसों से वह सब को देखने के लिये तड़प रहा था, और भैया भी बार-बार बुलाते रहे, किन्तु उसका आना न हो सका। कोई व्याह-कारज या ऐसा ही कोई अवसर होता तब तो जैसे भी हो जुगाड़ करना ही पड़ता। पर अकारण इतना पैसा बहाने की हिम्मत नहीं होती।

स्कूटर धीमा हुआ और ड्राइवर ने कोठी का नम्बर पूछा तो वह चौंक-कर सीधा हो गया। भैया की कोठी देखकर उसका मन खिल उठा। लोहे की जाली के गेट के परे बगीचा, फिर कांच का बड़ा दरवाजा, और दरवाजे के ऊपर बाहर को निकला बहुत बड़ा चिप्स का शैड। सब कुछ बिल्कुल आधुनिक पुकारते ही भाभी, अमां, बबलू, सब बाहर निकल आये, और उनके पीछे एक बहुत तगड़ा, साफ सुथरा कुत्ता जो उसे देखते ही हल्के से गुर्राने लगा। भाभी ने कुत्ते को डांटकर चुप करा दिया और उसके साथ बतियाती हुई स्कूटर तक चली आई। उन्होंने उसके हाथ से टोकरी और अटैची ले ली और उन्हें स्वयं भीतर ले चलीं।

भाभी ने कहा, "तुमने पहले खबर क्यों नहीं कर दी। हम गाड़ी लेकर आ जाते।"

वह बोला, "अकेला मैं तो था। मैंने कहा भैया को दोपहरी में तकलीफ देना ठीक न होगा।"

उसने पाया कि भाभी में कुछ नहीं बदला है। वे अब भी उतनी ही सुन्दर है, चेहरे पर वही ता गी। अम्मां पहले से कुछ अच्छी ही लगती हैं। सफेद बाल दो चार अधिक हो गए हों, पर मुंह पर लुनाई आ गई है जो मुरादाबाद रहते हुए कभी न थी। बबलू जरूर बहुत बड़ा हो गया है। उसने उसे चूमकर बांहों में उठा लिया और चारों तरफ घुमा दिया।

"रीता और नीता कहां हैं ?" उसने पूछा।

"स्कूल गई हैं दोनों। चार बजे आयेंगी। ये तो आजकल देर से आते हैं। सात बजे तक।......मैं अभी फोन करती हूं। देखना सारा काम छोड़कर के भागे आते हैं। तुम्हें बहुत याद किया करते हैं।"

अम्मां बोली, "उसे तेरा बहुत ख्याल आता है रमेश। कहता है कि तू यहां टिक कर डेढ़-दो महीने रहे तो तुझे किसी अच्छी जगह लगवाने की कोशिश करे। दूर रहते तो कुछ होना मुश्किल है। तू जानता ही है।"

× × × ×

यहां आकर वह सहसा बड़ा हलका अनुभव कर रहा था, बड़ा संतप्त और भरा-पूरा सा। मां, भैया, भाभी, तीन—तीन बच्चे हर समय कितनी व्यस्तता रहती है। वहां आशा के बावजूद कभी-कभी कैसी बोरियत सी होती थी। दो जनों की गिरस्ती ही कितनी......आशा भी कितने साल बाद गर्भवती हुई है। मां तो मां होती ही है, भैया, भाभी भी उसे कितना चाहते हैं।...... वे दो ही तो भाई हैं। और अपना कहने को ऐसा कौन है।

गाड़ी का हार्न सुनते ही वह चौंक कर बाहर निकल आया। भैया ही थे, उसने गेट खोल दिया। भैया ने गाड़ी से उतर कर उसे बांहों में भर लिया। "कितने सालों बाद आये हो छोटे......। भैया को बिल्कुल भुला बैठे तुम तो।"

भाई के स्नेह से विह्वल हो उसका कंठ थूक से भर गया। अस्फुट स्वर में वह दो-तीन बार "नहीं, नहीं" करके रह गया।

शाम तक चारों बातों में लगे रहे। अपने-अपने दुःख-सुख, रिश्तेदारों यार-दोस्त, पास-पड़ोस, कितनी बातें थीं करने को। कई सालों के लंबे चिट्ठे

खुलते रहे। मुश्किल बातों का सिलसिला तोड़ कर वे उठने लगे तो भैया ने ताकीद कर दी कि अब उसे कम से कम एक महीना यहां रहना होगा।

वह बोला, "मैंने आशा से पहले ही कह दिया था कि अब मुझे वे लोग जल्दी नहीं आने देंगे। मैं डेढ़ महीने की छुट्टी ले आया हूँ।"

धूप ढल चुकी थी। भाभी ने कहा, "चलो थोड़ा ठहल आयें। बाहर अच्छा मौसम है।" उसने कहना चाहा कि वह कार में सैर करना पसंद करेगा, पर यह सोचकर रह गया कि ये लोग क्या सोचेंगे कि कार की सवारी का शौक रखता है एक छोटा सा क्लर्क? जब-जब आने की बात उठती थी, उसके मन में एक चित्र उभर आता था, कि वह भैया की कार में बैठा फर्राटे से उड़ा जा रहा है। ऐसे बिंब भी बने थे कि वह स्वयं ड्राइव करना सीख गया है और कार लिये घूम रहा है। यह तो उसने निश्चय कर लिया था कि भैया से ड्राइव करना सीख लेगा। अपनी कार की बात वह सपने में भी नहीं सोच सकता था। पर एक बड़े यंत्र को हाथ के इशारे से इच्छानुसार शासित करने की संवेदना उसे बड़ी संतोषजनक प्रतीत होती थी। भाई की कार ही सही, वह इसके आकर्षण को तोड़ न पाता था। किन्तु ऐन समय पर वह कुछ नहीं कह पाया।

वे दूर तक घूमते चले गये। लौटे तो रात हो गई थी, उनके गेट में पांव धरते ही टामी दौड़ा आया। वह पूंछ हिलाता हुआ उछल उछल कर उनके हाथ चाटने लगा। रमेश को कुत्तों से सदा भय लगता आया था। जब टामी उसकी ओर बढ़ा तो वह हाथों को दायें बायें दबाते हुए एकदम पीछे हट गया। टामी सहसा दांत निकालकर गुर्राता हुआ उसकी ओरें झपटा। भैया ने दौड़ कर उसको पकड़ लिया और उसे डांटने लगे, नहीं तो काट खाता। रमेश खिसियाना हो आया। वह बोला, "यह दिन में भी मुझ पर गुर्रा रहा था। कैसा कुत्ता है?"

"तुम्हें डरना नहीं चाहिए, रमेश। भाभी ने कहा—कुत्तों का तो स्वभाव ही होता है कि डरने वाले पर झपटते हैं। दिन भर तो इसे बांध कर भी नहीं रख सकते। तुम यों डरते रहोगे तो कैसे काम चलेगा। बड़ी मुश्किल हो जाएगी।......वैसे टामी बहुत बढ़िया कुत्ता है।"

भैया बोले, "तुम्हें इससे दोस्ती कर लेनी चाहिये, छोटे। बस, दो एक

बार इसे थपथपा दो। और क्या है? फिर यह कुछ नहीं कहेगा।" पर उस की समझ में नहीं आता था कि कुत्तों से कैसे दोस्ती की जाए?

भैया का ऐश्वर्य उसे खुशी ही नहीं गर्व की अनुभूति भी देता था, जैसे वह स्वयं उसे अर्जित करने अथवा भोगने में हिस्सेदार हो। पिछले मकान में भी उनकी स्थिति अच्छी थी, पर इस कोठी में आने के बाद उन्होंने बहुत जल्दी-जल्दी तरक्की की थी। उन्होंने कंपनी के काफी हिस्से खरीद लिये थे जिससे बोर्ड आफ डायरेक्टर्स में उनका नाम आ गया था और इसके साथ ही दफ्तर की कार, फोन, चपरासी, माली आदि। मोटे वेतन के अतिरिक्त लाभांश, टी० ए० और दूसरी बहुत सी सुविधायें। उसे मां के पत्रों द्वारा ये सूचनायें मिलती रहती थीं। वह उन पत्रों को बार-बार पढ़ता था और सहेज कर रखे जाता। अपने मित्रों और संबन्धियों में ये बातें वह किसी न किसी तरह प्रसारित कर देता। दो-एक बार उसने लक्ष्य किया था कि लोग उसके स्वर की खुशी और गर्व की मिली जुली भावना की असंस्कृति पर व्यंग्य से हंसते हैं। इससे उसे लज्जा आई थी और अब वह अधिक सफाई से, जैसे प्रसंगवश, भैया की उपलब्धियां गिना जाता। यह उसके लिये एक विवशता बन गई थी।

दूसरे दिन ही पार्टी थी। भैया को जब-तब ऐसी पार्टियां देनी पड़ती हैं। बिजनैस के अनेक मामले इन पार्टियों की मेजों पर ही तय किये जाते हैं। उस के लिये यह नया अनुभव था। वह शाम से ही बड़े उछाह से तैयारियों में हाथ बटाने लगा था और नौकरों से बहस करने लगता था कि भाभी ने आकर कहा, "रमेश तुम इतना घबराओ नहीं। सब इन लोगों पर छोड़ दो, इन्हें अनुभव है। यह तो रोज़ ही चलता है।"

पार्टी के बाद लोग तीन-तीन चार-चार की टोलियों में गप्पें मारने लग गये थे। उसने सहसा लक्ष्य किया कि वह बिल्कुल अकेला है। भैया ने कई व्यक्तियों से उसे परिचित करा दिया था। पर वह स्वयं को उनकी बातों में हिस्सा लेने लायक नहीं पा रहा था। जिस जीवन की वे बातें कर रहे थे वह उससे अपरिचित था। भद्रलोक की 'पोलाइट टाक' का शिष्टाचार भी उसे न आता था। इधर बरसों से तो वह अखबार भी नहीं ले पाता, दफ्तर में मौका लग जाये तो सुरखियां देख लेता है। कुछ देर वह बेवकूफों की तरह खड़ा उन टोलियों की ओर देखता रहा। एक ओर खड़ी तीन स्त्रियां जोर से हंस पड़ीं तो उसे लगा कि वे उसे देखकर हंसी हैं (यद्यपि वह जानता था कि ऐसा नहीं

है।) और तब वह संकुचित हो कर भीतर चला आया जहां डिनर लेकर मां आ बैठी थी।

बाद में भैय्या ने आकर कहा, रमेश तुम्हें सोसायटी में मिक्स होना चाहिए। तुम अलग-थलग खड़े रहे और फिर जल्दी से चले आए। यहां क्या कोई काम अटका था।......और हां, ऐसे अवसरों पर जरा कपड़ों का ख्याल रखा करो।'

उसे लगा कि भैया ने यही कहने के लिये बात शुरू की है। उसने भी देखा था कि उसकी पैंट भद्दी लग रही है। पर वह अपनी ओर से अच्छी से अच्छी चुनकर जो चार पैंटें साथ लाया था उनमें से दो धुलने गई हुई थीं और तीसरी की इतफाक से आज ही सिलाई उखड़ गई थी। विवश हो कर उस दो दिन की पहनी हुई पैंट दुबारा पहननी पड़ी। अपने यहाँ वह तीन दिन क्या, पूरा हफ्ता भी एक ही पैंट में काट देता था और उसे कभी महसूस भी न होता जब तक आशा उसे याद न दिलाती। पर यहां की बात और थी।

भैया को इतनी लम्बी व्याख्या देने का उसका मन हुआ। पर वे शायद समझ गये थे और उन्होंने कोमल स्वर में कहा कि कई बार ऐन मौके पर कपड़े नहीं निकलते, ऐसा हो जाता है। ऐसे मौके पर वह उनके वार्डरोब से जो चाहे ले सकता था।

भैया के साथ जाकर वह उनके आफिस के ठाठ देख आया था। उनके बड़े सारे मेज़ पर दो फोन रखे थे। पीछे कूलर लगा था। बाईं तरफ कोने में एक छोटी मेज़ पर स्टैनों बैठती थी। दरवाजे पर चपरासी जो घंटी बजते ही दौड़ा आता। उनके कमरे में कोई भी बिना अनुमति लिये नहीं आ पाता। पर अतिथियों का तांता लगा रहता है। और हर बार चाय, काफी और कोल्ड ड्रिंक्स की ट्रे पर ट्रे। भैया एकाध घूंट लेकर छोड़ देते हैं।

भैया ने दो तीन बार उड़ती उड़ती सी बात कही थी कि उसे यहां किसी प्राइवेट फर्म में सैट्ल कराया जा सकता है। तब सहसा उसके मन में एक सुखद आशा बंध गई थी। पर बाद में भैया ने इस दिशा में कोई सक्रियता नहीं दिखाई तो एक दिन उसने दबी-सी आवाज में उन्हें याद दिलाया। भैया बोले, "अरे, तुमने मुझे याद नहीं दिलाया। अब मुझे इतनी सारी बातें ध्यान नहीं रह पातीं। अच्छा, तुम मेरे आफिस आना। वहां कोई रास्ता निकालेंगे। वैसे तो कई लोग हैं।......लेकिन पता करना पड़ेगा कि कहां.........।"

उसे भैया की क्षमता पर पूरा विश्वास था। उस दिन पार्टी में कितने

बड़े-बड़े आदमी थे। सभी कारों वाले ऊंचे अफसर, या बड़े व्यापारी। और उनकी सजी-धजी स्त्रियां, कान्वेंटी उच्चारण में अंग्रेजी बोलती हुई। आशा जैसी "घरेलू" स्त्री की तुलना में वे कितनी "अलभ्य प्रतीत होती हैं।"......ऐसे-ऐसे लोगों से संपर्क रखने वाले भैया क्या नहीं करा सकते।

आफिस में कोई भी महत्वपूर्ण व्यक्ति आता तो भैया उसका परिचय करा देते। वह उन लोगों की बातचीत के संदर्भों से अनभिज्ञ था और उसके बीच अपने को अजनबी पाता। जब कुछ व्यक्तियों ने उससे बातें करने की कोशिश की तब भी वह बेहद संकुचित हो उठा और 'जी, जी' करके रह गया। उसने नोट किया कि इससे भैया की नज़रों में झुंझलाहट की एक क्षीण सी रेखा कौंध जाती है जिसे वे बातों का विषय बदल कर डुबा देते हैं।

कई दिन ज्यों ही गुजर जाने पर उसने उन्हें फिर टोका तो भैया ने जवाब दिया, "ऐसे काम के लिए किसी से मुंह फाड़कर नहीं कहा जाता है छोटे। उचित परिस्थितियां देखकर बड़े 'कैजुअली' बात चलाई जाती है। इसीलिए मैं तुम्हें इन लोगों से मिलवाता रहा हूं। लेकिन तुम......तुम इतने दबे-दबे रहते हो कि तुम्हारा अच्छा इंप्रेशन नहीं पड़ता। अच्छी प्राइवेट फर्मों में पर्सनेलिटी पर सब से ज्यादा ज़ोर दिया जाता है ....।"

यह जवाब सुनकर सहसा उसका बदन गरमा आया था और दिल की धुकधुकी बढ़ गई थी। उसके दिल में भैया के प्रति कोई भी आरोप नहीं था, क्योंकि वह उनकी स्थिति समझ रहा था। उसे तो अम्मां और भैया ने ही उकसाया था वरना उसने कभी ऐसी कोशिश नहीं की थी। पर कहीं कुछ बुझ गया था जैसे। वह 'अच्छा, खैर......" बुदबुदाया।

इसके बाद भैया के आफिस जाने को उसका मन नहीं हुआ। बैसे भी वहां उसका दिल नहीं लगता था। पर भैया यह न सोचें कि उसने महसूस किया है, महज इसीलिए वह जाता रहा।

गर्मी की दोपहरें बहुत लम्बी हो गई थीं। पर बच्चों को छुट्टियां हो गई थीं और उनके साथ दिन मज़े में कट जाता था। वह कभी उनके साथ ताश और कैरम खेलता, कभी उनसे अंग्रेजी कविताएं सुनता और उन्हें कहानियां सुनाता। सुबह वह सबको दूर तक घुमाने ले जाता। अब उसकी टामी से भी दोस्ती हो गई थी जिसको लेकर बच्चे कई दिन तक उसका मज़ाक बनाते रहे थे। और वह भी उनके साथ जाता। प्रायः भाभी या अम्मां भी उनके

खेलों और सैरों में शामिल हो जातीं। दिन को वे लोग फ्रिज से निकाल कर कोका कोला और फैंटा पीते और ठंडे किये हुए फल खाते। भारी पर्दों से अंधेरे में डूबे और कूलर लगे हुए ड्राइंग रूम में गर्मी बिल्कुल महसूस नहीं होती थी। उसे सहसा अपना घर याद हो आता था। .....उनके एक कमरे वाले मकान के ड्राइंग रूम, बैड-रूम, डाईनिंग-रूम में दरवाजा खोलने पर लू और तपिश की लपटें भीतर आतीं तो उसे बन्द करने पर घुटन बढ़ जाती। उसका टेबल फैन हवा कम देता और खड़खड़ ज्यादा करता था और उसकी हवा का दायरा एक ही आदमी के लिए काफी होता था। वह उसे चारपाइयों से काफी दूर इस तरह का कोण बनाकर रखता कि दोनों पर हवा आ सके। पर इस का परिणाम यह होता कि किसी पर भी हवा न आती। तब आशा उसे उसके पैताने कर देती है। इस पर वह मुनमुना कर पंखा बन्द कर डालता। आशा गर्मी से घबराने लगती तो वह बड़े जोरों से निर्णय करता कि अगले वेतन पर जैसे भी हो छत का पंखा जरूर ले आएगा। किन्तु और बहुत सी आवश्यकताओं की भांति छत के पंखे की भी कभी बारी नहीं आई थी।......और फिर उसे याद आ जाती आशा।

•

शाम वह बच्चों के साथ बाज़ार गया तो उन्हें टाफियां दिला लाया था। तब से बबलू रोज़ शाम होते ही 'अंकल टाफी लेंगे' की फर्माइश करता। रुपये बारह आने में बच्चे खुशी से किलकते हुए लौटते तो उसे बड़ा अच्छा लगता। दो-एक बार वह उन्हें आइसक्रीम भी खिला लाया था। एक दिन रीता ने जिद की। वह टली नहीं, चकलेट का टिब्बा ही लेगी। तीन छोटे पैक्टों पर उसके चार रुपये टूट गए और उसे बहुत खला। अगली शाम तीनों बच्चे फिर जिद्द करने लगे—अंकल चाकलेट दिलाकर लाओ, तो वह उन्हें बहाने बनाकर टालने लगा। नीता उसकी टांगों से लिपटकर शोर मचाने लगी—अंकल जी चाकलेट, अंकल जी चाकलेट। भाभी, जो अब तक उनकी गपशप में शरीक थी सहसा उठी और नीता को खेंच कर जोर से चांटा जमा दिया। भाभी के चेहरे की कड़ी रेखाएं देखकर वह स्तंभित रह गया। उस दिन भाभी सारा दिन तनी रही थी और वह समझ नहीं पाया था कि उन्हें कैसे मनाया जा सकता है। एक बार उसने सोचा कि चाकलेट ले आए और बच्चों को थमा दे. पर अब बच्चे भी उसके पास नहीं फटक रहे थे।

पहले भैया काम जल्दी निपटा कर और प्रायः शाम को व्यस्तताएं रद्द करके जल्दी घर आने लगे थे। भैया-भाभी और वह तीनों कभी पिक्चर या

किसी और कार्य-क्रम में चले जाते और कभी घूमने निकल जाते। खाने के बाद देर तक बातें होती रहतीं। पर अब भैया फिर से व्यस्त रहने लगे थे। उसका अकेले कहीं जाने को मन नहीं होता था, भैया थके-थके से आकर सोफे में धंस जाते और भाभी मुंह हाथ धोने और कपड़े बदलने का आग्रह करती रहती। भोजन के बाद भैया अखबार में मुंह गड़ा देते या ऊंघने लगते। भाभी कुछ बोलती तो वे अनमने से हूं, हां करते जाते। भाभी झल्ला कर कहती—जब तुम्हें जल्दी नींद आती है तो यहां बैठे रहना ज़रूरी है।......एक ठंडा तनाव कमरे में फैल जाता।......जिस दिन भैया अधिक थके होते तो सीधे अपने कमरे में चले जाते। वे खाना भीतर ही मंगा लेते और उसे आवाज देते। तब वह कहता कि वह यहीं खा लेगा या कह देता कि आज वह देर में खाएगा।

उसने अब ज्यादा न टिकने का फैसला कर लिया था। उसने बात छेड़ी कि वह कल शाम की गाड़ी से जाना चाहता है। भैया सुस्त सी आवाज में बोले—"ऐसी क्या जल्दी है ? अभी कुछ दिन ठहरते।" उसने कुछ रस्मी बहाने दुहरा दिये और भैया चुप हो गए। भाभी ने कहा, "सच बात यह है कि अब आशा के बिना मन नहीं लगता इनका।" उन्होंने अपने स्वर में हंसी घोलने की कोशिश की। बबलू और नीतू का आग्रह था कि अंकल को अभी नहीं जाने देंगे। उसने उन्हें समझाते हुए कहा कि उसका अब जाना आवश्यक है। वह फिर आएगा बहुत-बहुत लम्बी छुट्टियां लेकर। और साथ ढेर सारे नए नए खिलौने भी। नीतू ने कहा—"मम्मी, अंकल को रोक लो न।" भाभी बोली, "अब क्या करें नहीं मानते तो, इनकी मर्जी है।"

× × × ×

उसने मां से कह—"माँ, अपना सामान बताओ जो-जो ले जाना हो। सुबह बांधना होगा।"

"मेरा सामान ? क्यों......" मां विस्मित सी थी।

"वह तुम्हें बताया था न......आशा को सितम्बर में......" उसने कुछ सकुचाते हुए कहा। "सच पूछो तो मैं तुम्हें लेने ही आया हूँ।"

मां उसके चेहरे से नजरें हटाकर दीवार की ओर देखती हुई मौन रह गई। एक दो बार मुंह खोलने को हुई फिर सधे स्वर में बोली, "अभी तो तीन महीने हैं। इतनी जल्दी जाकर मैं क्या करूंगी।"

"उसकी तबीयत ढीली रहती है। तुम चलो तो बड़ा सहारा रहेगा।"

"पर मुझ से तो अब कुछ काम-धाम होता नहीं छोटे। यह तू देख ही रहा है।......तू उसकी बहन को बुला ले। वह है भी पास। तू कहेगा तो उस मौके पर दस-पंद्रह दिन को मैं आ जाऊंगी।" छोटी बहू के पहले प्रसव पर माँ ऐसा निरूत्साह दिखाएगी उसे यह आशा न थी। उसे एक क्षीण सा आघात लगा। शायद उसने कहीं गहरे में अपने को इसके लिए पहले ही तैयार कर रखा था वह बोला, "तुम चलती तो बहुत अच्छा था।......आशा ने भी तुम्हें जरूर ले आने को कहा है।"

"बेटा, अब मेरे तो भजन-चैन के दिन हैं। मुझे क्यों घसीटते हो इस सब में। मुझसे तो अब कुछ होता नहीं।......फिर यहां कुछ मन ऐसा रम गया है कि... .."

"............"

फिर मां का स्वर कुछ आर्द्र हो आया—"कितने बरसों के बाद भगवान ने सुनी है।......पहला जापा है बहूका। उसका खूब ख्याल रखियो।...... जरूरत पड़े तो मुझे लिख दियो। मैं तेरे भाई से सौ-दो सौ भिजवा दूंगी। पर जच्चा बच्चा की सेवा में कोई कसर न रहे।"

उसका सामान स्कूटर में रखा जा रहा था। भैया का ब्लड-प्रेशर बढ़ आया था और उसने उन्हें आग्रह पूर्वक मना कर दिया था कि उन्हें स्टेशन चलने की जरूरत नहीं है। वह जानता था कि मां की आंखें तरल हो आई हैं। उनसे आंखें मिलाने का साहस उसे नहीं हो रहा था। एक क्षणांश भर को उनकी ओर देखते हुए उसने उन्हें नमस्ते की।

"तुम आओ न ...सबको लेकर आओ कभी। उसने बच्चों के गाल थपथपा कर स्कूटर में बैठते हुए भाभी से कह।"

"वहां......?" भाभी सहसा अचकचा गई, "हूँ..."

"मैं तो इतना व्यस्त हो गया हूं कि...तुम देखते ही हो।" भैया थकी-सी आवाज में बोले, "तुम्हें तो बहुत छुट्टियां मिलती हैं। तुम आया करो। इस बार आशा को भी साथ लाना।"

"देखो......इननी दूरी है......" आगे के शब्द स्टार्ट होते स्कूटर की आवाज में डूब गए।

अन्धेरा और उजाला

—सुदर्शन पानीपती

सुना था, कि यारो अंधेरे छंटे हैं
हुई भोर उषा किरण मुस्कराई
उजाले हुए मुक्त अब बन्धनों से
गया वक्त जब आदमी, आदमी के
लहू को भरे, ओक में, खिलखिलाकर
अहम् से स्वयं को फरिश्ता समझ ले।

सुना था, मनादी हुई है नगर में
कि अब शोषितों को तनिक भय नहीं है
न तैमूर, नादिर, न चंगेज़, गज़नी
यहां जुल्म के देवता अब नहीं हैं।

सुना है कि जल्लाद कल कह रहे थे
कि ईसा बहुत हैं सलीबें नहीं हैं
न अब धर्म के नाम पर युद्ध होगा
न मैदान होगा कहीं "करबला" का
"अहिल्या" न पत्थर बनेगी कभी फिर
कि अब देव खुद पत्थरों के बने हैं
न हव्वा शिकायत करेगी कि उसकी-
कई बेटियों के बदन नोच डाले
उसी के दरिंदा नुमा लाडलों ने
ज़हर पी लिया है सभी कौरवों ने
कि अब द्रौपदी है दुशासन नहीं है।

सुना था कि इतिहास ही अब नया है
जहालत गयी, सभ्यता आ गयी है।
नया युग बड़ी ही निराली अदा से
गये वक्त का मरसिया पढ़ चुका है।

बताओ जरा दोस्तो सत्य है यह
कि सुनने में धोखा हुआ है मुझी को ?
तुम्हें स्वर गजर का सुनाई दिया था
कि बन्दूक या तोप की गर्ज थी वह ?
तुम्हें मंदिरों के पुजारी मिले थे-
कि बलि-बेदियों के विधायक मिले थे?
कभी कोरिया में बमों के धमाके
कभी वेयतनामी प्रजा का सुबकना
कभी सोनरा बांगला की धरा पर
बिलखती बहू बेटियों की पुकारें।

बताओ कि तहज़ीब के चिन्ह हैं ये
कि इतिहास दुहरा रहा है स्वयं को ?
बताओ कि आखिर अंधेरे नहीं तो
उजाले निगलने चले हैं मनुज को ?

कहो धर्म-आडम्बरी गाज़ियों से
कहो आत्म निर्मित सभी मोमिनो से
कि ईश्वर कहें या खुदा ही कहें, वह
उन्हीं के चलन से उदासीन होकर
न जाने कहां शर्म से छिप गया है
खुदा मंदिरों, मस्जिदों में नहीं है।

अंधेरे यहां तक बढ़े हैं सुदर्शन
कि इतिहास पर कालिमा पुत गयी है
युगों से हमें लालसा थी उषा की
मगर रात की उमर बढ़ती रही है।

मैं परिवर्तन का शंख गुँजाता हूं

—सत्य प्रकाश 'बजरंग'

तिमिरांकित भूतल पर जीवन की-
किरन जगाने को,
हर कली - कली के अधरों पर-
उल्लास उगाने को,

प्राची में रवि बन कर मुस्काता हूँ।
मैं परिवर्तन का शंख गुंजाता हूं।

पाटल पुष्पों पर भंवरों का गुञ्जन
सुरभित समीर का चहुँ दिस अभिनन्दन
झूमते आम्र में पिक बैनी बोली
मधु-ऋतु ने सतरंगी झोली खोली

मैं यौवन की वीणा पर गाता हूं।
मैं परिवर्तन का शंख गुंजाता हूं।

पपीहा के प्यासे अधरों का कूजन
सरिता की लहर लहर का स्पन्दन
शिखरों से झरते झरनों के स्वर में
झिलमिल तारों के मोहक अम्बर में

अगणित छवि से मैं रास रचाता हूं
मैं परिवर्तन का शंख गुंजाता हूं।

जयकार दिशाएं करती हैं मेरा
प्रति-बिम्बित मुझ से भूतल का घेरा
विहगों के कलरव में मेरी वानी
मेरी प्रभुता में झूम रहे प्रानी

हर बन्द द्वार पर अलख जगाता हूँ।
मैं परिवर्तन का शंख गुंजाता हूँ॥

मेरे पाहुन आए, बहुत दूर से आए

—उर्मिला अग्रवाल

घायल अन्तर का उद्वेलन
रह न सका दृढ़ अपना-ही-पन
मर्यादित मन रहा कि जैसे
घर का द्वारा, घर का आंगन
दे न सकी उपहार नेह का
कर न सकी प्रेमिल अभिनंदन
भूली बिसरी बात न पूछी
साल रहा मुझ को सूनापन ।
मेरे सावन ! मैं तो रही स्वयं भरमाए ।

छलके आंसू रोक न पाई
पोंछ न पाई गीला आंचल
उमड़ चले हैं सुध-बुध खोय
नेह-मिलन जल के ये शतदल
मेरा - तेरा भेद नहीं अब
पथ का भेद नहीं रह पाए
माटी की काया घुल जाए
मिलन घड़ी उत्सव बन आए
मेरे भावन ! मैं तो रही स्वयं बौराय ।

नई चेतना का गीत

—मुकुट सक्सेना

उड़ाओ आज अबीर गुलाल,
कि गाओ नई नई मल्हार,
कि सावन नए नए, कि फागुन नए नए ।।

आज नारी का रूप विचित्र,
दीखती वीरों का सा चित्र ।
हाथ में ले कर के तलवार—
रही वह दुश्मन को ललकार ।।

बदल दो परिभाषा श्रृंगार,
कि कंगन नए नए. कि कंगन नए नए ।।

आज है प्रश्न मान सम्मान,
उगाओ फसलें नई किसान ।
सैन्य दल ने झेले हमले—
मेरे मज़दूर न तू दम ले ।।

न रक्खो कैक्टस के गम्ले,
कि आंगन नए नए, कि आंगन नए नए ।।

जवानी के अंगड़ाते सपन,
देखते कई धूप औ तपन ।
तुम्हीं हो रत्न देश के पास—
तुम्हीं हो मां बहनों की आस ।

समय है, लिख दो नव इतिहास,

कि यौवन नए नए, कि यौवन नए नए ॥

समय की सुनता जो आवाज़,
समय उस पर ही करता नाज़ ।
बदलता समय सैंकड़ों भेस—
बताते खंडहर के अवशेष ॥

बदल दो सिद्धान्तों के वेश,

कि चिंतन नए नए, कि चिंतन नए नए ॥

चिन्तन

—प्रकाश प्रेमी

चिर परिचित श्वासों का ताल
चलता है अविराम अभागा
सतत ज्वलित दुख, दारुण रण में
दग्ध हृदय को दे सांत्वना,
जाता है किस निर्जन वन में
फैला कर आशा का जाल
चिर परिचित श्वासों का ताल

मन मस्तक हो मन्त्र मुग्ध सा
जाना चाहता है उस पार।
चिन्तन की नौका में चलता
ले कर एक क्षीण पतवार।
जहां बिछा हर ओर सुनहरा
इच्छाओं का सुन्दर जाल
चिर परिचित श्वासों का ताल।

वह स्वप्निल संसार सजाने
की इच्छा के फिरते साए,
सब को भाग समान मिले औ,
भाग्य वक्र रेखा बिन्ध जाए
जर्जर कर दे यह भ्रम जाल
चिर परिचित श्वासों का ताल

——:o:——

निर्माण नूतन

—चन्द्रकान्त जोशी

आ करें निर्माण नूतन भव्य भारत के भवन का।

प्राण ! वर्षों से पवन आज़ाद बहता है यहां पर
और वर्षों से मनुज मधुगीत गाता है यहां पर
किन्तु भावी की कहानी एक सुन्दर स्वप्न सा है
स्वप्न पर साकार करना बोलता यह मीत मन का।

आ करें .. ..

रङ्ग लायें हम उषा की प्रथम किरणों के अछूते
चित्र साज वह सुनहले जो स्वयं मुंह बोलते
हर मनुज भावों भरा हो, खेत, वन, उपवन हरे हों
चित्र मेरे देश का यह, सिद्ध हो मेरे सपन का।

आ करें ... ...

आ चलें हम तारकों के देश का सोना उतारें
आ चलें नन्दन सुवन में प्राण लाने को बहारें
और भारत की धरा पर सकल यह निधियां लुटादें
गीत गायें कोकिलें मिल, रङ्ग निखरे इस चमन का।

आ करें ... ...

नींव तो रख दी मगर अब भवन को ऊंचा उठाना
और सागर के तले से रत्न सुन्दर खोज लाना

सींचनी हैं देश की छोटी बड़ी प्यासी लताय
भ्रमर होंगे गुनगुनाते, औ' खिलेगा मन सुमन का।

आ करें ... ...

लक्ष्य निश्चित हो अमर तो राह देते हैं समुन्दर,
चल निरन्तर बढ़ चलें हम छोड़ भय कर पंथ का डर
हो सके तो प्राण निश्चित साधना का ध्यान कर ले
कल्याण जिस से हो सकेगा, सकल गण का सकल जन का।

आ करें निर्माण नूतन भव्य भारत के भवन का।

रङ्गों का मेल

—उषाछवि व्यास

मन होता है
थोप लूं जी भर पैरों में महावर
और फिर टांक दूं उसके साथ
बसन्त में उगे
कांटों की कत्थेई चुभन
लाल - लाल - लाल लहू बहेगा
पीर
चाहे मन नहीं सहेगा
कि-तु...किन्तु...
कम से कम
रंगों का मेल तो रहेगा।

बिरहन की होली

—सत्य प्रकाश आनन्द

होली फिर आ गई प्रियतम.........
पर तुम नहीं आए.........
सखियां रंग में डूब गई हैं
और उनकी चोलियां गुलाल से तर हैं,
उनके गेसुओं से रंग आंख-मिचौली कर रहे हैं
और उनकी साड़ियां इन्द्र-धनुष का समय पेश कर रही हैं।
परन्तु मैं अभागिन दूर परे...;..
दरवाज़े की ओट में खड़ी—
यह सब दृश्य देख रही हूं।
उनके प्रियतम उन पर पिचकारियां मार रहे हैं।
सखिया कहकहा लगाती हैं और मचल कर दोहरी हुई जा रही हैं,
ऐसा प्रतीत होता है कि .....
एक साथ कई साज़ बज उठे हैं।
और उनसे संगीत अंगड़ाइयां लेकर उभरने लगा है,
परन्तु प्रियतम !
मेरे मन का साज खामोश है,
इस साज पर......इस रुत में......
इस खिलती घड़ी में......
कौन अपनी मस्त उंगलियां फेरे,
जिससे अमर प्रेम का मधुर संगीत जाग उठे,

और मैं मन ही मन इन रंगों में डूब जाऊं
प्रियतम आ जाओ
और मुझे अपने प्रेम रंग में भिगो लो,
क्योंकि
होली फिर आ गई है।
देखो हर तरफ बहारें मुस्करा रही हैं,
और भंवरे फूलों से आंख मिचोली खेल रहे हैं,
उनके घूंघट उठा - उठा कर
उनसे अठखेलियां कर रहे हैं,
शरारत भरी नज़रों से
वो एक दूसरे को देख रही हैं
प्रियतम इस सुहानी रुत में
मेरा घूंघट कौन उठाये
मुझे शरारत भरी नज़रों से कौन देखे
मैं बिरहन तेरी कब से राह देख रही हूँ
आ जाओ प्रियतम !
क्योंकि होली फिर आ गई है ! !

ठंडी श्रोस पर पल-भर

—जितेन्द्र उधमपुरी

प्रात: के
अ्रध खुले नयनों में
अ्रलसाई अ्रलसाई नींद,
धरती की छाती पर
ढलक आए
अ्रोस के यह कण
लग रहा—
निशा की अ्रोट में
रोया - रोया
विधवा-पन
या फिर—
हरी हरी
साड़ी में लिपटी,
यौवन के भार तले
दबी - दबी,
जूड़े में तारे जड़े
कोई नव - वधु
वार रही हो
तन मन
अ्रौर कभी—
चलते - चलते

ठंडी ओस पर
क्षण-भर
होता ऐसा
भास मुझे
जैसे कोई
चिर परिचित प्रेमिका
छू रही हो
चरण चरण

——:o:——

औरत

—विष्णु सक्सेना

— चौधरी साहब, कुछ सुना आपने ?
—क्या ?
—'अमरावती' कल कालोनी से चंडीगढ़ 'शिफ्ट' कर गई !
—कहां ?
—२२ सैक्टर में।
—चलो अच्छा हुआ, मोहल्ले से गंद तो निकला।
—हां, यह तो ठीक है पर......
—पर क्या ?
—मोहल्ले में रौनक भी उसी से थी।
—हां भई ! छड़ों का भी दिल लगा रहता था।
—और कालोनी में नया फैशन भी वही लेकर आती थी।
—बहुत सोर्सफुल औरत थी।
—बहुत दबंग भी ! लड़ाई में औरत तो क्या मरदों को भी पीछे हटना पड़ता था।
—छोड़ो यार हमने क्या लेना है ?
—पर यार, उसका मकान नम्बर क्या है ?
—मकान नम्बर।
—हां।
—अरे भई, ६ महीने बाद जाकर किसी से भी पूछ लेना—बता देगा।

समीक्षा

काला फूल

—मंजु शर्मा

मानव जीवन सामाजिक जीवन है। समाज से कटकर मनुष्य मानव जीवन नहीं बिता सकता। व्यक्ति हृदय से चाहे कैसी कैसी कल्पनाएं करे परन्तु सामाजिक ताने बाने के गोरख धन्दे से निपट कर ही– जो कुछ भवितव्य होता है वह होता है। समाज के सामूहिक व्यवहार का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। अपवाद स्वरूप राम, कृष्ण, गौतम, गान्धी समाज को कुछ समय के लिये भले ही अपने पीछे लगा लें परन्तु वास्तविकता यही है कि व्यक्ति के जीवन की धारायें मोड़ने में सामाजिक परिस्थितियां ही विशेष महत्व रखती हैं।

पानू साधारण परिवार का लड़का था। मुहल्ले में कतल की वारदात हुई। पानू का सारा परिवार भी पुलिस के शिकञ्जे में आया। पानू की पीठ उधेड़ दी गई। उसके बाप को अधमुआ कर दिया गया, उसकी सुन्दर जीजी की पत उतारी गई। इस अमानुषिक अत्याचार की ताब न लाकर वह पानू बड़े अफसर से फर्याद करने जाता है। परन्तु मामले की तहकीकात के लिये उसे पुलीस वालों के हाथ ही सौंप दिया जाता है।

पानू अभी पहली मार नहीं भूला था। वह जान पर खेल कर पुलीस के चुंगल से भाग निकलता है। वह किशोर वय का बालक खानाबदोशों के एक प्रौढ़ मुखिया के हाथ लगता है जो उसकी सेवा सुश्रूषा करके अपना बेटा बनाता है। पानू खानाबदोशों के वातवरण में पलता है उसके पुराने संस्कार खाना-बदोशी माहौल में दबते जाते हैं वह मांसाहारी बनता है, शराब पीने लगता है, चोरी सीखता है, लड़ाई सीखता है, स्वेच्छारिता सीखता है। खानाबदोश

हमजोली लड़की के प्रेम में फंसता है और इस जीवन की उतराइयों और नीचाइयों से परिचय प्राप्त करता है। शरीर से बलिष्ठ परन्तु मन से साधारण होते हुए उसे अपनी प्रेमिका के अन्यत्र विभक्त प्रेम से चोट पहुँचती है।

वह इस खानाबदोशी जीवन में अपनी बहन से अचानक मिलता है और लालायित हो उठता है परन्तु उसके साधारण और भोले स्वभाव का बहन द्वारा शोषण होता है।, उसे मर्मान्तिक पीड़ा होती है। वह जंगल में चला जाता है और अपनी झोंपड़ी डाल कर दिन बसर करने लगता है परन्तु सामाजिक दबाव यहां भी उसे भागने पर मजबूर करता है। वह अपनी भैंस के साथ एक अहीर गूंगी और बहरी लड़की के सम्पर्क में आता है। यहां भी वह देख कर परेशान होता है कि उसका श्वसुर उसका शोषण करता है। अपनी गूंगी बहरी पत्नी को लेकर वह इस स्थान को छोड़ देता है और कहीं अन्यत्र जाकर गृहस्थी बनाता है। यहां उसका एक भिखारन के साथ सम्पर्क आता है जिसे वह पत्नी के रूप में रखता है। वह गूंगी बहरी पत्नी सौत की उपस्थिति को सहन न कर सकने के कारण आत्महत्या करके प्राण दे देती है। पानू की भिखारन पत्नी वास्तव में बड़ी समझदार, सहनशील और सूरत और सीरत की सुन्दर स्त्री है परन्तु स्त्री सुलभ स्वार्थ भी उसमें है। शरीर की कोमल होने के कारण वह पानू की मार सहन नहीं कर सकती। वह पानू का एक युवती के साथ विवाह करा देती है और स्वयं उस युवती के भाई के साथ चली जाती है। पानू फिर उसे ले आता है परन्तु उसे पीटता रहता है। उसकी आत्मा गांव के मुखिया से हण्टर खाने के बाद विद्रोह कर उठती है। और वह कातिल डाकुओं के साथ मिल जाने की की बात सोचता है। परन्तु रजिया की आत्महत्या उसे संसार से विरक्त कर देती है। वह समाज से अलग रह कर जीना चाहता था परन्तु उसने महसूस किया कि समाज की सेवा उसका अंग बन कर और अपना स्वार्थ छोड़ कर ही सुन्दर भाव से की जा सकती है।

ताराशंकर बन्ध्योपाध्याय ने 'काला फूल' में खानाबदोश जीवन का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। समाज में चलती प्रवृत्तियों और व्यक्ति के मानस में जन्म लेती भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का जोड़ तोड़ सुन्दर ढंग से निभाया है।

ले०—तारा शंकर बन्ध्योपाध्याय, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली ६ मूल्य ८ रुपये